हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

वर्ष ५२ अङ्क ६

इस अङ्क में —

'धार्मिक शिक्षा विधेयक' की माँग
पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य
योग-चिकित्सा में शिथिलीकरण
सिन्दूर-धारण करने का अर्थ
मन्त्र-शक्ति का चमत्कार
वैदिक उदात्त भावनाएँ
कादम्बिनी-सम्मोहन अङ्क-समीक्षा
सप्तशती- स्तोत्र का विधान
कात्यायनी - तंत्र के प्रयोग
बाधा-विनाशक श्रीगायत्री-कवच
सिद्ध नाम - कीर्त्तन

उपयोगी पुस्तकें

- **गायत्री - कल्पतरु** — १५ - ००

'गायत्री' का जैसा महत्व है, उसे देखते हुए उसके दार्शनिक तत्व की विशद व्याख्या का सरल हिन्दी में अभाव ही रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में भगवती गायत्री का अत्यन्त सरल, सुबोध और वैज्ञानिक शैली में रहस्योद्घाटन किया है। इसके अतिरिक्त साधना - क्रम **सन्ध्योपासन** (प्रातः, मध्याह्न, सायं) **श्रीगायत्री - कवच - स्तोत्र, मन्त्रात्मक गायत्री - कवच, श्रीगायत्री - हृदय, श्रीगायत्री - अष्टोत्तर - सहस्र- नाम - स्तोत्र, श्रीगायत्री - पूजन - यन्त्र, श्रीगायत्री - काम्य- प्रयोग, अनुभूत प्रयोग** आदि बहु - उपयोगी विषय भी प्रकाशित हैं।

- **श्रीनवरात्र - कल्पतरु** — ३० - ००/ सजिल्द ४० - ००

'नव - रात्र' महा - पर्व की महिमा को लोग अधिक - से- अधिक समझ सकें, इसी उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक में 'नव - रात्र' के विविध पक्षों — **'नवरात्र' की ऐतिहासिकता, 'नवरात्र' की महिमा, 'नवरात्र - रहस्य'** एवं **'नवरात्र - पूजन'** पर प्रकाश डालनेवाले निबन्धों को प्रकाशित किया गया है।

- **श्रीकाली - कल्पतरु** — ५० - ००/ सजिल्द ६० - ००

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा सरल हिन्दी में **महा - माया काली के रहस्यों का विस्तृत स्पष्टीकरण प्रस्तुत हुआ है। भगवती काली की महिमा, पूजा - पद्धति एवं भगवती काली के उपासक, तीर्थ - स्थानादि, दुर्लभ - साहित्य** पर भी प्रकाश डाला गया है।

- **श्रीदुर्गा - कल्पतरु** — १५ - ००

प्रस्तुत पुस्तक में भगवती दुर्गा के विलक्षण स्वरूपों का परिचय, श्रीदुर्गा - मन्त्र का परिचय, श्रीदुर्गा-दीप - दान प्रयोग, श्री दुर्गा - यन्त्र - तत्व, त्रि - शक्ति चामुण्डा का पूजन - विधान, श्रीदुर्गा - मन्त्र के काम्य - प्रयोग प्रकाशित हैं।

- **भुवनेश्वरी - रहस्य (हिन्दी अर्थ सहित)** — ४५ - ००

इस पुस्तक में भगवती भुवनेश्वरी की पूजा - विधि, मन्त्र - भेद, कवच, नाम - साहस्र स्तोत्रादि, मन्त्र - साधना आदि रहस्य - पूर्ण विषयों पर सरल हिन्दी - अर्थ - सहित विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

- **श्री ललिता - सहस्र- नाम (सविधि एवं सव्याख्या)** — ५० - ००

'श्रीललिता- सहस्रनाम' की महिमा आध्यात्मिक जगत् में प्रसिद्ध है। इसकी कितनी ही व्याख्याएँ संस्कृत, अंग्रेजी आदि में की गई हैं किन्तु हिन्दी में पहली बार साधकोपयोगी व्याख्या इस पुस्तक द्वारा प्रकाशित हुई है।

भगवती ललिता के एक हजार नामों की व्याख्या के साथ - साथ श्री ललिता सहस्र - नाम का सविधि मूल पाठ, प्रयोग- विधि, सामान्य प्रयोग, निष्काम - पाठ, सकाम - पाठ, पुत्र - प्राप्ति- प्रयोग, वशीकरण - प्रयोग, श्री - प्राप्ति- प्रयोग, आयुष्कर- प्रयोग, ज्वर - हर - प्रयोग, चतुर्थ्यन्त सहस्र - नामावली, माहात्म्य - निदर्शन भी इस पुस्तक में प्रकाशित है। पृष्ठ सं० लगभग ३००। आकर्षक जिल्द।

- **श्री ललिता त्रि - शती (सविधि एवं सव्याख्या)** — २० - ००/ सजिल्द ३० - ००

भगवती ललिता के तीन सौ नामों की रचना स्वयं भगवती ललिता और श्रीकामेश्वर शिव द्वारा हुई। 'हयग्रीव' से ३०० नामों वाले इस स्तोत्र को 'अगस्त्य' मुनि ने प्राप्त किया। प्रस्तुत पुस्तक में भगवती ललिता के ३०० नामों का अर्थ, स्तोत्र का मूल - पाठ एवं प्रयोग - विधि प्रकाशित है। आकर्षक जिल्द।

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज–२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६००/४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज–२११००६

वर्ष ५२] [अङ्क ६
भाद्रपद, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० सितम्बर, १९९३

कवन पवन बल यवन मन, **विकसत पाकिस्तान।**
जनम करम रम धरम जब, **जन मन हिन्दुस्तान॥**
रक्षक छवि भक्षक धरत, **फिरत फँसावत भक्ष।**
मधुर वचन जल जाल - पद, **छुवत धरावत लक्ष॥**
अविचल भक्ति सु-शक्ति मन, **युक्ति न फँस भव-जाल।**
रोग - शोक - भय छूट अस, **माँगत 'मोति' मशाल॥**

—गुप्तावतार बाबाश्री

इस अंक में

- 'धर्म' और 'राजनीति' विधेयक ... १६२
- स्वाधीन भारत का उज्ज्वल भविष्य कैसे और क्यों ? १६५
- श्री षोडश्यै नमः ... १६७
- पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य ... १६९
- योग-चिकित्सा में शिथिलीकरण १७१
- सिन्दूर-धारण करने का अर्थ १७२
- मन्त्र-शक्ति का चमत्कार (एक सच्ची घटना) १७५
- अर्पित मेरा शत-शत प्रणाम (श्रद्धाञ्जलि) १७७
- वैदिक उदात्त भावनाएँ १७८
- 'कादम्बिनी' : 'तन्त्र और सम्मोहन-विशेषाङ्क' १८१
- जिज्ञासु के पत्र १८४
- **साधन-माला** १८७-१९२
  - ११८ सप्तशती-स्तोत्र का विधान,
  - ११९ 'कात्यायनी' तन्त्र के 'सप्तशती'-प्रयोग
  - १२० शत-बाधा-विनाशक श्रीगायत्री कवच
  - १२१ सिद्ध नाम-कीर्तन

'धर्म और राजनीति' विधेयक
की अपेक्षा
'धार्मिक शिक्षा विधेयक'
की आवश्यकता

श्री ऋतशील शर्मा, प्रयाग

मनुष्य का ध्येय **'सुख' की प्राप्ति** है। **'सुख' - प्राप्ति की इच्छाएँ** ही हम मनुष्यों को **'क्रिया'-शील** बनाती हैं। 'मानव'-समाज **सुखेच्छा** से प्रेरित होकर नाना प्रकार के कार्यों में रुचि - **पूर्वक प्रवृत्त** होता है। यथा—**शिक्षा, व्यवसाय, राज-नीति, खेल-कूद, उत्सव** आदि-आदि।

सुख-प्राप्ति के सम्बन्ध में मुख्यतः द्वि-विध वैचारिक भेद होने के कारण 'मानव' - समाज की अनन्त **सुखेच्छाएँ** हमें दो वर्गों में विभाजित हुई दिखती हैं। इन्हीं दो वर्गों के कारण 'मानव'-समाज भी दो खण्डों में बँट जाता है। पहला खण्ड वह है, जिसमें मनुष्य यह समझते हैं कि केवल भौतिक पदार्थों से ही **सुखेच्छा की पूर्ति** सम्भव है। इसके विपरीत दूसरा खण्ड है, जिसमें मनुष्य यह समझते हैं कि समस्त भौतिक पदार्थ वियोगान्त है। वियोगान्त पदार्थों में **सुख की इच्छा** करना 'अज्ञान'-मूलक है। **वास्तविक 'सुख'** भौतिक पदार्थों के प्रति **स्व - 'वृत्ति' की स्थिरता, संयम अथवा 'साक्षी' - भाव की प्राप्ति में** है।

पहले प्रकार के 'मानव' - समाज के लिए **'सुख' का आधार**—भौतिक पदार्थ होते हैं। वहीं, दूसरे प्रकार के 'मानव'-समाज के लिए बाह्य भौतिक पदार्थ **'सुख' का आधार नहीं, अपितु 'सुखाभास'** होते हैं और वास्तविक **सुख-शान्ति का आधार—'आत्म-लहरी'** होती है। इन दोनों प्रकार के 'मानव'-समाज को हमारे यहाँ **क्रमशः अधार्मिक समाज** और **धार्मिक समाज** कहा गया है। अपना देश **'भारत'** आदि-काल से प्रधानतया **धार्मिक समाज** रहा है।

'प्रकृति' की इच्छानुसार विश्व में कभी **धार्मिक समाज** की प्रबलता बढ़ जाती है, तो कभी **अधार्मिक समाज** की। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव के कारण आज-कल विश्व में **अधार्मिक समाज** की प्रबलता चतुर्दिक् व्याप्त है। अपना देश 'भारत' भी इससे अछूता नहीं है। यही कारण है कि 'मानव' - समाज नाना प्रकार की भौतिक सम्पदाओं की अभिवृद्धि के बाद भी अत्यन्त अशान्त एवं दुःखी है।

अधार्मिक समाज की प्रबलता आज अपनी चरम सीमा की ओर है। 'धर्म' - प्रधान भारत में तथा-कथित **धार्मिक संस्थाएँ** और **'धर्म'-विज्ञ** भी इनकी चपेट में हैं अथवा यों समझिए कि चतुराई के साथ **अधार्मिक समाज** ने **'धार्मिक'-स्वरूप का आवरण** ले लिया है। **'चण्डी'** मासिक पत्रिका के पिछले अङ्कों में प्रकाशित **'मन्त्र-शास्त्र की भ्रामक प्रस्तुति'** सम्बन्धी लेख देखिए। इन लेखों द्वारा यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि किस चतुराई के साथ **अधार्मिक समाज** या **अधार्मिक व्यक्ति** 'धर्म' की

भ्रामक चर्चा लुभावने रूप में कर रहे हैं और हमारे तथा-कथित आधुनिक शिक्षा - प्राप्त **'धर्म' - प्रेमी बन्धु** उनके **चक्कर** में पड़कर दिग्-भ्रमित हो रहे हैं।

'धर्म'-प्रधान देश भारत में **अधार्मिक समाज की प्रबलता** का एक नवीन उदाहरण 'धर्म और **राज-नीति** विधेयक है। दैव-योग से यह अभी लोक-सभा में प्रस्तुत नहीं हो सका। इस विधेयक के पीछे भी **अधार्मिक समाज** की चतुराई दिखाई देती है। इस विधेयक के जन्म - दाताओं के लिए **पद, भौतिक पदार्थों की** सुखेच्छा इतनी तीव्र है कि वे इसे शीघ्र-से-शीघ्र बिना कुछ विचारे लागू करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के पास न **शास्त्र का अध्ययन** है, न ही **सत्सङ्ग का अवसर**! प्रारब्ध पर इन्हें विश्वास नहीं है और न ही **ईश्वर के प्रति श्रद्धा**! **आधुनिक शिक्षा से प्रभावित**—इन लोगों को **'शास्त्र'** की बात तो छोड़िए, जिनकी कमाई या परिश्रम पर उनका सारा प्रपञ्च खड़ा है, **उन मनीषियों** की बात भी समझ में नहीं आती। कहने को तो वे उन्हें आज भी अपने मुखारविन्दों से क्रमशः **महर्षि, राष्ट्र-पिता** आदि कहते हैं, पर व्यवहार में—अपने स्वार्थ की पूर्ति में इन सम्बोधनों का 'नाम' - मात्र भी स्मरण नहीं रखते। प्रमाण के रूप में **स्वतन्त्र भारत के दो प्रधान नायकों के उद्धरणों** को देखिए, सारी बात अपने-आप स्पष्ट हो जाएगी। यथा—

महर्षि अरविन्द के उद्गार

'...हिन्दुस्तान में जब-जब महान् जागृति हुई है, जब-जब उसने प्रगति की है—चाहे वह किसी तरह की क्यों न हो--उसने हमेशा किसी-न-किसी गहरे धार्मिक सोते से जीवनी-शक्ति पाई है। जब कभी पूर्ण और विशाल धार्मिक जागृति हुई है, तब राष्ट्रीय उत्थान ने भी विराट् और सबल रूप लिया है। जब धार्मिक आन्दोलन संकुचित या अपूर्ण हुआ है, तो राष्ट्रीय गति भी अपूर्ण, अस्थायी और लड़खड़ाती हुई रही है। यह चीज हमारे इतिहास में बार-बार स्थिर रूप से दिखाई देती है और इस बात का प्रमाण है कि यह हमारे स्वभाव का अङ्ग है। अगर हम 'धर्म' को छोड़कर दूसरे तरीके अपनाएँ, तो या तो प्रगति बहुत ही धीमी, रुक-रुककर कष्ट के साथ और अपूर्ण होगी या फिर होगी ही नहीं। जब हमारे सामने भगवान् का दिया हुआ, माँ का दिया हुआ पक्का रास्ता है, तो उसे छोड़कर किसी पग-डण्डी को क्यों अपनाया जाए?...'

'...जब यह कहा जाता है कि भारतवर्ष ऊपर उठेगा, तो उसका अर्थ होता है—'सनातन धर्म' ऊपर उठेगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष महान् होगा, तो उसका अर्थ होता है—'सनातन धर्म' महान् होगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष बढ़ेगा और फैलेगा, तो इसका अर्थ होता है—'सनातन धर्म' बढ़ेगा और संसार पर छा जाएगा। 'धर्म' के लिए और 'धर्म' के द्वारा ही भारत का अस्तित्व है।...'

'...'सनातन धर्म' ही हमारे लिए राष्ट्रीयता है। हिन्दू - जाति 'सनातन धर्म' को लेकर पैदा होती है, उसी को लेकर पनपती है। जब 'सनातन धर्म' की हानि होती है, तब इस जाति की भी अवनति होती है। 'सनातन धर्म' ही राष्ट्रीयता है। यही वह सन्देश है, जो मुझे आपको सुनाना है।...'

महात्मा गांधी के उद्गार

"मैं सत्य का अन्वेषक हूँ, मैं अत्युत्कंठित हूँ और इसी जीवन में 'मोक्ष' प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरा राजनैतिक कार्य-क्रम भी इसी बात का प्रतीक है। इस साधन द्वारा मैं अपने क्षण-भंगुर शरीर से मुक्त होना चाहता हूँ। इस लक्ष्य से मेरी देश-सेवा की भावना केवल एक स्वार्थ है। मुझे इस नश्वर राज्य की अभिलाषा नहीं। मैं जिस न्यायी राज्य को पाने का प्रयत्न कर रहा हूँ, वह है अविनाशी राज्य (मोक्ष)। मैं अपने उस ऊँचे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी गुफा का आश्रय नहीं लेना चाहता। मेरी मुक्ति का मार्ग अपने देश तथा देशवासियों की सेवा करना है। मैं प्राणी-मात्र की सेवा करना चाहता हूँ। मेरे विचार में अध्यात्म-वाद से शून्य राजनीति निरर्थक ही नहीं, बल्कि वह एक फाँसी की रज्जु बन कर जीव को पतन की ओर ले जाती है।...'

अतः **'धर्म'-प्रधान** अपने देश भारत में आज आवश्यकता **सच्ची धार्मिक** शिक्षा की है, न कि जीवन के किसी क्षेत्र—शिक्षा, व्यवसाय, राज-नीति आदि से **'धर्म'** के त्याग की। विद्यार्थियों, नव-युवकों को अध्ययन-काल में ही वेद, शास्त्र, दर्शन, पुराण आदि का बोध कराना आवश्यक है। तभी **अधार्मिक समाज** के प्रपञ्चों की वास्तविकता स्पष्ट हो सकेगी और तभी अपने देश को **'सुख', 'शान्ति'** की प्राप्ति भी हो सकेगी। बहुत पहले ऐसे ही विचार, ३ फरवरी, १९५६ को मद्रास में **श्रीयुत राजगोपालाचारी जी** ने **'इण्टरनेशनल फेलोशिप'** की वार्षिक बैठक में व्यक्त किए थे—

'...देश में धर्मों की बहुलता है लेकिन इसको स्कूलों में धार्मिक शिक्षा लागू करने के मार्ग में रुकावट नहीं बनना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आरम्भिक कक्षाओं में अवश्य धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए। बच्चे को अपनी पसन्द का धर्म छाँटने दिया जाए। बिना धार्मिक आधार के बच्चे के चरित्र का सही तौर पर विकास नहीं किया जा सकता। नैतिकता का एक-मात्र आधार 'धर्म' ही है। यदि मनुष्य 'धर्म' को त्याग दे, तो उसकी आत्मा में एक सूनापन छा जाता है और तब भौतिक स्वार्थ उस स्थान को घेर लेते हैं।...'

संक्षेप में, आज हमें स्व - देश में नैतिकता, सत् - चरित्र के विकास हेतु वास्तव में **'धर्म और राजनीति' विधेयक** की अपेक्षा **'धार्मिक शिक्षा विधेयक'** की नितान्त आवश्यकता है। बिना इसके अब **स्व-देश का कल्याण** सम्भव नहीं है। प्रकृति' ने इसके लिए अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। उल्टे युग के अनुरूप उसने **उल्टे विधेयक** की योजना रक्खी है। धीरे-धीरे प्राचीन **'धर्म'-प्रधान देश** में, यही उल्टा विधेयक **'धार्मिक शिक्षा विधेयक'** के रूप में **सीधा विधेयक** आएगा। सभी 'धर्म'-प्रेमी बन्धुओं को 'प्रकृति' के इस आयोजन में **'निमित्त'** के रूप में सहर्ष प्रस्तुत होना चाहिए, इसमें सन्देह नहीं।

कैसे और क्यों

[१५ अगस्त महर्षि अरविन्द का **आविर्भाव-दिवस** है। आपके **आविर्भाव - दिवस** के उपलक्ष्य में हम यहाँ आपके कुछ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे आज भी हम सभी लोग आवश्यक मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकते हैं और अपना तथा अपने देश का भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं। —सं०]

भारत स्वतन्त्र हो चुका है। मुझसे अधिक और योग्य कार्य करनेवाले वीर पुरुष स्वतन्त्रता-आन्दोलन को बाहर से चलाते रहे हैं और मैं भगवान् की आज्ञानुसार अपने ढङ्ग पर आध्यात्मिक शक्ति द्वारा इसको सींचने और सहायता देने का पुरुषार्थ करता रहा हूँ। १५ अगस्त को भारत स्वाधीन हुआ। १५ अगस्त ही मेरा जन्म-दिन है। यह दिनाङ्क का सामञ्जस्य एकाएक ही नहीं। मैं तो यही समझता हूँ और मेरा यह विश्वास है कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता भगवान् ने मेरे जन्म-दिन के भेंट-स्वरूप दी है—किन्तु दो पैकटों में अर्थात् **'एक स्वतन्त्र भारत'** की अपेक्षा **'दो स्वाधीन भारत'** दे दिए ! मुझे तो एक **'अखण्ड भारत'** ही यथेष्ट था।

मैं देश को टुकड़े होने से न बचा सका क्योंकि योगी की शक्ति चाहे जितनी हो, एक सीमित वृत्त से बाहर वह उसका प्रयोग नहीं कर सकता। योगी ही नहीं, अवतार भी जब मनुष्य का तन धारण करके पृथ्वी पर आता है, तो जो कार्य उसे करना होता है, उससे इधर-उधर नहीं जाता। ईश्वर मानव की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करने को बाध्य नहीं और न ही उसे सृष्टि के प्रबन्ध में किसी की सम्मति अथवा सलाह की आवश्यकता है।

देश का विभाजन एवं रक्तपात अटल थे। वे रुक नहीं सकते थे, लेकिन जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, यह विभाजन अस्थायी है। पाकिस्तान भारत से अलग नहीं रह सकेगा। चाहे किसी आकृति में मिलें, दोनों अङ्गों को अवश्य एक होना पड़ेगा। आकृति से हमें कोई प्रयोजन नहीं। धर्म की नींव पर यह मिलाप नितान्त आवश्यक है और अवश्य होगा। यद्यपि जीव-हिंसा, रक्तपात व मार - काट होगी, किन्तु विजय भारत की ही होगी। इसके बिना शान्ति असम्भव है। संसार का आध्यात्मिक नेता बनने के लिए भारत का **'अखण्ड'** होना अवश्यम्भावी दृष्टि-गोचर होता है।

वर्तमान भारत की आध्यात्मिक दशा को देखिए। हमारे पूर्वजों ने सहस्रों वर्षों के अभ्यास, विचार और पुरुषार्थ के पश्चात् हमें **ब्रह्म - ज्ञान, अध्यात्म - योग, आत्मिक शक्ति** और **प्रकाश** दिया है। उन्होंने विशाल विचार - सागर में तैर कर विशाल ज्ञान प्राप्त किया था और एक विशाल सभ्यता स्थापित कर दी थी, लेकिन वह सब आज कहीं दृष्टि-गोचर होती नहीं। अब तो ज्ञान की जन्म-भूमि में अज्ञान का विस्तार हो रहा है !

कुछ थोड़ी-सी बहुत बड़ी आत्मिक शक्तियों को छोड़कर बाकी भारत-वासी सीधे-सादे सामान्य जन हैं। उनमें विचार - चिन्तन का अभाव है। वे चिन्तन करना नहीं चाहते। विचार कर ही नहीं

सकते। उनमें तनिक भी **'शक्ति'** नहीं! केवल तनिक-सी क्षणिक उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। इसका फल क्या होगा? कुछ संन्यासी और वैरागी साधु सिद्ध मुक्त हो जाएँगे। कुछ भक्त प्रेम से—भाव से—आनन्द से अधीर होकर नाचा करेंगे। शेष सारी जाति निर्जीव, जड़ तथा बुद्धि-हीन होकर अज्ञान और अन्धकार में डूब जाएगी! भला यह कैसी आध्यात्मिक सिद्धि है?

भारत के भक्तों और ज्ञानियों की एक बड़ी संख्या मन और बुद्धि के प्रयोग से आगे नहीं जाती, लेकिन मन कितना ही शुद्ध, पवित्र और बलवान क्यों न हो, वह अनन्त अखण्ड परमात्मा को पूर्ण-रूपेण ग्रहण नहीं कर सकता। उसे ग्रहण करने के उपाय **समाधि, मोक्ष, निर्वाण** इत्यादि ही हैं। अन्य कोई उपाय नहीं।

भारत - वासियों में दो महान् कमियाँ हैं—१ **'चिन्तन-शक्ति'** का अभाव अर्थात् गम्भीरता से विचार नहीं करते और २ **'पुरुषार्थ'** एवं **'परिश्रम'** से जी चुराना। वे बनी-बनाई खीर खाना चाहते हैं! विचार किए बिना ही ज्ञान मिल जाए! श्रम किए बिना—साधनों के बिना ही कोई सिर पर हाथ फेर कर योगी बना दे! किसी सरल साधन से सिद्धियाँ प्राप्त हो जाएँ! शरीर के अभिमान (अध्यास) को त्याग कर अपने सत्य-स्वरूप आत्मा में स्थिर होकर **'जीवात्मा'** को **'परमात्मा'** के साथ मिलाने के लिए **'अध्यात्म-योग'** के साधनों का नाम सुनते ही इनको डर लगने लगता है! इतने कमजोर और कायर हो गए हैं! बस, आराम-तलबी चाहते हैं!!

योरप के लोग बहुत गम्भीर चिन्तक हैं और वे सामान्य रूप में **'शक्ति'** के उपासक हैं, इसलिए **'शक्ति'** ग्रहण करते हैं। भारत-वासी **'शक्ति'** के नहीं, आराम - तलबी के उपासक हैं। **'शक्ति - साधना'** हमने त्याग दी है और **'शक्ति'** ने भी हमें त्याग दिया है। हम **'प्रेम'** की साधना करते हैं, लेकिन जहाँ **'ज्ञान'** और **'शक्ति'** नहीं, वहाँ **'प्रेम'** भी नहीं रहता। हृदय में सङ्कीर्णता आ जाती है।

योरप के लोगों की विचार-बुद्धि और शक्ति भी **'माया'** तक ही सीमित है। आध्यात्मिकता में आकर बुद्धि गोरख-धन्धे में लिप्त हो जाती है, किन्तु हम भारतीयों के अन्तःकरण में अपने पूर्वजों की कृपा से **'अध्यात्म'** का बोध है। उसका लोप नहीं हुआ। जिसमें यह **'बोध'** है, उसके हाथ में ऐसा **'ज्ञान'** व ऐसा **'बल'** है, जिसकी एक फूँक से योरप की सारी भौतिक शक्तियों ही उड़ाई जा सकती है। इसीलिए भगवान् ने अलीपुर जेल में मुझे यह चेतावनी दी थी कि **'भारत - वासी आर्य - जाति को ही उन्होंने संसार में ब्रह्म-ज्ञान और अध्यात्म-विद्या का रक्षक व प्रचारक बनाया** है। इसके लिए देश को आन्तरिक उत्तेजना देने अथवा मतवाला बना देने की आवश्यकता नहीं।' राजनैतिक आन्दोलन में यह सब मैंने किया था, लेकिन **'अध्यात्म-क्षेत्र'** में आन्तरिक उत्तेजना लाभ-दायक नहीं होती। **'पूर्ण-योग'** में तो बहुत **गम्भीरता** (भद्रता), **गुप्त - वीरता** व **समता** की आवश्यकता है। उसी **'समता'** में मनुष्य के अस्तित्व की रग - रग और कण - कण में **'शक्ति'** का सागर उमड़ता है। बिना **'शक्ति'** के **'भक्ति'** नहीं होती। **'शक्ति'** के समुद्र में ज्ञान-रूपी सूर्य की किरणें प्रतिबिम्बित होती हैं और उस प्रकाश में **अनन्त प्रेम, आनन्द और एकता का अनुभव** होता है।

भारत में प्रचलित **'गुरू-गीरी'** पर मेरा विश्वास नहीं। मैं स्वयं भी **'गुरु'** बनना नहीं चाहता। लाख चेले या शिष्य मैं नहीं चाहता। केवल १०० पूर्ण योग - चेतन मनुष्य, जिनका अहङ्कार नष्ट हो गया है और जो भगवान् के सेवक बन गए हों, मुझे मिल जाएँ, तो वे सारे देश ही को नहीं, समस्त

(शेष पृष्ठ १६८ पर)

श्री षोडश्यै नमः

रचयिता : श्रीयुत बलराम दुबे, लखनऊ (उ० प्र०)

हो काजल की रजत कामना—
या रवि-तनया की श्यामलता ।।
या हीरक के वज्र-हृदय की—
शुभ्र पार-दर्शी निर्मलता ।।
हो काजल की रजत कामना—
या रवि-तनया की श्यामलता ।
कृष्ण-कज्जला की अभिलाषित—
दर्पण की निर्मल जाज्वलता ।
या विमर्ष की हो आकांक्षित—
तम की उर-प्रेरित उज्ज्वलता ।।
हो काजल की रजत कामना—
या रवि-तनया की श्यामलता ।।
बन्द नयन की मधुर कल्पना,
गन्ध-सिक्त रस-रश्मि स्निग्धता ।
या विराट रवि-तेज-पुञ्ज की—
ज्वलित शिखा की दीप्त प्रखरता ।।
हो काजल की रजत कामना—
या रवि-तनया की श्यामलता ।।
रवि-शशि-अग्नि-प्रभा-मण्डल के—
अन्तस्तल की विमल शुद्धता ।
तरुण लुनाई वय षोडश की—
अन्तर्मन की मन्त्र-मुग्धता ।।
हो काजल की रजत कामना—
या रवि-तनया की श्यामलता ।।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।
ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः ।
ॐ श्री षोडश्यै नमः ।।

नवल वल्लरी कल्प-द्रुम की,
ललित सपर्णा गन्ध-पुष्पिता ।
नैसर्गिक मणि-धाम विराजो,
अनघ सुन्दरि-षोडशि-ललिता !
वन कदम्ब तरु छाँव श्यामला—
रत्न-जटित हिण्डोल-राजिता ।।
मणि-मुक्ता माणिक्य रत्न की—
सुखद ज्योति झिलमिल सु-भासिता ।
नवल-यौवना सुभग-कामदा –
काम-कला परिपूर्ण-चन्द्रिका ।।
वन कदम्ब तरु छाँव श्यामला—
रत्न-जटित हिण्डोल-राजिता ।।
तरुण तेज रवि स्नेह सोम मधु—
सिक्त रूप-लावण्य-मण्डिता ।
कर्पूरी अम्लान-केतकी,
गौराङ्गी नव राग-रञ्जिता ।।
वन कदम्ब तरु छाँव श्यामला—
रत्न-जटित हिण्डोल-राजिता ।।
सोलह दल सरसिज वसन्त की—
साधक सिद्ध अनङ्ग-सेविता ।
सफल साधना की ज्योतिर्मय—
सोम-सिञ्चिता पुष्पित-लतिका ।।
वन कदम्ब तरु छाँव श्यामला—
रत्न-जटित हिण्डोल-राजिता ।।
पाशांकुश-धनु-बाण-धारिणी—
विधि-हरि-हर-ईश्वर सुवन्दिता ।
सौम्य सदा-शिव के पर्यङ्क पर –

रत्न-कुसुम परिधान-शोभिता ।।
वन कदम्ब तरु छाँव श्यामला—
रत्न-जटित हिण्डोल-राजिता ।।
श्री कमला हरि शक्ति वैष्णवी—
विमल बुद्धि विधि-ज्ञान-संस्थिता ।
शम्भु सदा-शिव शक्ति अपर्णा——
ईश्वरि ईश्वर-इष्ट-साधिका ।।
वन कदम्ब तरु छाँव श्यामला—
रत्न-जटित हिण्डोल-राजिता ।।
त्रिपुर-सुन्दरी षोडशि ललिता ।।
पूर्ण काम-यति की आराध्या—
ब्रह्मचारिणी की पवित्रता ।
शुद्ध मन्त्र की मुक्त उष्मिता—
त्रिपुर-सुन्दरी षोडशि ललिता ।।
अन्तःपुर मणि-धाम-वासिनी—
त्रिपुर-सुन्दरी षोडशि ललिता ।।
अन्तर्जगत् सुमेरु छाँव में,
अमिय आचमन की पिपासिता ।

ज्योतिर्मयी प्रभा मणिपुर की,
भाव-सुमन मृदु अर्पित ललिता ।।
अन्तःपुर मणि-धाम-वासिनी ।
त्रिपुर-सुन्दरी षोडशि ललिता ।।

कस्तूरी मृग की सुगन्धि मधु,
सोम-कला मुद मदिर मुग्धता ।

प्रेमाकुल निष्काम अर्चना,
शुद्ध भावना अर्पित ललिता ।।
अन्तःपुर मणि-धाम-वासिनी ।
त्रिपुर-सुन्दरी षोडशि ललिता ।।

रक्ताम्बर परिधान सजाऊँ,
रत्न-जटित माणिक्य-मण्डिता ।
तुझे चढ़ाऊँ अन्तर्मन की,
तृप्ति राज-राजेश्वरि ललिता ।।
अन्तःपुर मणि-धाम-वासिनी ।
त्रिपुर-सुन्दरी षोडशि ललिता ।।

(पृष्ठ १६६ का शेषांश)

संसार को आत्मीयता से भरपूर करने के लिए पर्याप्त हैं। मेरे स्पर्श से जागकर या किसी अन्य के स्पर्श से जाग्रत होकर यदि कोई अपने अन्दर से अपने सोए हुए **'ईश्वरीय तेज'** को प्रगट करके दैवी जीवन को प्राप्त करे, तो बस—यही मैं चाहता हूँ।

ऐसे मनुष्य ही इस देश को ऊँचा उठाकर फिर से इसे संसार का **'आध्यात्मिक नेता'** बनाएँगे। मैंने वनों, पर्वतों और तपोवन में योगाभ्यास नहीं किया। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए व्यावहारिक कार्य पूर्ण-रूपेण करते हुए योग सीखा है। जेल की तङ्ग कोठरी में—गन्दे वायु-मण्डल में—जेल की तमोगुणी खुराक खाते हुए—**'पूर्ण-योग'** की प्राप्ति की है तथा **'पाण्डिचेरी'** में भी शहर की आबादी के अन्दर एक मकान में रहता हूँ। जो मैंने प्राप्त किया है, आप सब प्राप्त कर सकते हैं।

पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य

श्रीयुत सतीशकुमार उपाध्याय, प्रयाग (उ० प्र०)

१८ अगस्त, १९९३ से चान्द्र-मान के अनुसार भाद्रपद अधिक मास प्रारम्भ होने जा रहा है जो १६ सितम्बर, १९९३ को समाप्त होगा। इस 'अधिक मास' को **'मल-मास'** या **'पुरुषोत्तम-मास'** भी कहा जाता है। धर्म-निष्ठ हिन्दू **'पुरुषोत्तम-मास'** को विविध धर्मानुष्ठानों के साथ बिताते हैं।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और श्रावण महीनों में **अधिक मास** १२ वर्षों बाद आता है। आषाढ़ में १८ वर्षों बाद और भाद्रपद में २४ वर्षों बाद **अधिक मास** होता है। आश्विन मास में १४१ वर्षों बाद और कार्तिक मास में ७०० वर्षों बाद **अधिक मास** आता है, फिर भी इन्हें अधिक नहीं कहा जाता, बल्कि भाद्रपद तक ही **'अधिक मास'** कहा जाता है। मार्गशीर्ष, पौष और माघ **अधिक मास** नहीं होते। जिस वर्ष आश्विन मास अधिक पड़ता है, उस वर्ष पौष मास **'क्षय मास'** हो जाता है। उन दिनों दोपहर तक मार्गशीर्ष और दोपहर बाद पौष माना जाता है तथा इसी क्रम से इन दोनों महीनों के धर्म-कार्य इसी एक महीने में किए जाते हैं।

यह **अधिक मास** आज के या कुछ दिनों पहले के सिर-फिरे ज्योतिषियों के मस्तिष्क की उपज नहीं है, बल्कि इसका उल्लेख भारतीय प्राचीन वाङ्मय वेदों तक में पाया जाता है। इस प्रकार यह अनादि-काल से चला आनेवाला कहा जा सकता है। आधुनिकों के अनुसार भी ईसा पूर्व १५०० वर्षों तक पहुँच जाता है। भारतीय ज्योतिष के प्रसिद्ध इतिहासकार **श्रीशङ्कर बालकृष्ण दीक्षित** के अनुसार **भारत में अधिक मास का चलन शक-पूर्व ५ हजार वर्ष से कहा जा सकता है।**

बात यह है कि हमारे यहाँ **चान्द्र वर्ष** और **सौर वर्ष**—दो वर्ष-मान प्रचलित हैं। जहाँ **सौर वर्ष** के दिन लगभग ३६५ होते हैं, वहीं **चान्द्र वर्ष** के दिन ३५४। बारह महीने का वर्ष मानने की पद्धति भी वैदिक-काल से चली आ रही है। इसलिए यदि एक वर्ष के कुल १२ चान्द्र मास माने जायँ, तो वर्ष का पहला महीना सर्व-प्रथम गर्मी के दिनों में, फिर जाड़े में, फिर बरसात में—इस प्रकार उत्तरोत्तर पीछे पड़ता जायगा। दूसरी बात यह है कि ३३ सौर वर्षों में चान्द्र वर्षों की संख्या लगभग एक वर्ष बढ़ जायगी। इस आपत्ति को टालने के लिए प्रत्येक चान्द्र मास अधिक मान लिया जाता है। तभी 'सौर' और 'चान्द्र' मासों का मेल बैठ पाता है। यह जो अतिरिक्त मास पड़ता है वही **'अधिक मास'** कहा जाता है।

जिस चान्द्र मास में मेष-संक्रमण हो, उसे चैत्र मानकर आगे के महीनों को वृषादि संक्रान्तियों के अनुसार वैशाख आदि नाम दिए जायँ और जिस महीने में स्पष्ट संक्रमण बिलकुल ही न आए, उसे **अधिक मास** माना जाय अर्थात् **'संक्रान्ति-रहित मास ही अधिक मास'** है। इसी प्रकार जिस महीने में दो संक्रान्तियाँ पड़ें अर्थात् **संक्रान्ति-द्वय-युक्त** जो मास हो, वह **'क्षय-मास'** है। इस बार **सिंह - संक्रान्ति** भाद्रपद कृष्ण अमावास्या (१७ अगस्त, १९९३) को है और आगे फिर **कन्या-संक्रान्ति** अधिक भाद्रपद कृष्ण अमावास्या (१६ सितम्बर, १९९३) को है। इस प्रकार १ महीने (१८ अगस्त, १९९३ से १६ सितम्बर, १९९३) में कोई संक्रान्ति नहीं पड़ रही है। इसलिए यह **अधिक मास** है।

अधिक मास अमान्त मास-मान से ही सम्भव होता है, पूर्णिमान्त मास - मान से नहीं अर्थात् कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा को पहला दिन मान कर, पूर्णिमा को महीना पूरा मानने की स्थिति में कभी अधिक नहीं आ सकता। शुक्ल - पक्ष की प्रतिपदा को पहला दिन मानकर, अमावास्या को महीने का अन्त मानें, तभी वह आ सकता है, जैसा कि इस बार भी है। अमान्त मास के मान से ही पूरे एक महीने में कोई **सूर्य-संक्रान्ति** नहीं पड़ी, इसलिए यह **अधिक मास** हो गया। इसी प्रकार **क्षय-मास** में मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को **धनु-संक्रान्ति** और पौष कृष्ण अमावास्या को **मकर-संक्रान्ति** पड़ती है। अतः वहाँ एक ही अमान्त मास में दो संक्रान्तियाँ पड़ती हैं।

अधिक **मास** और **क्षय मास**—दोनों का ही नाम **'मलिम्लुचि'** या **'मल - मास'** है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' (३।१) में इसे निन्द्य बतलाया गया है। धर्म-शास्त्रों में इसे 'सर्व-नव्य-कर्म-वर्ज्य' तक कहा है। ऐसी स्थिति में क्या कारण है कि इसे बहुत महत्त्व प्राप्त हो गया और यह **'पुरुषोत्तम मास'** कहा जाने लगा? इसका उत्तर हमें पुराणों में ही मिलेगा। विशेषकर 'पद्म-पुराण' और 'वृहन्नारदीय महा-पुराण' में। 'पद्म-पुराण' में २९ अध्यायों और 'वृहन्नारदीय' में ३१ अध्यायों में **'पुरुषोत्तम - मास-माहात्म्य'**, **'मल-मास-माहात्म्य'** नाम से अलग प्रकरण ही दिए गए हैं।

'वृहन्नारदीय पुराण' के प्रकरण को देखने पर पता चलता है कि सभी लोगों द्वारा **अधिक मास या मल - मास** को अनाथ बतला कर सर्वथा निन्द्य मानने पर **अधिक** या **मल-मास** अत्यन्त दुःखी हुआ और वैकुण्ठ में भगवान् नारायण के पास पहुँच कर अपने उद्धार की प्रार्थना की। श्रीनारायण उसे लेकर गो-लोक में भगवान् श्रीकृष्ण के पास गए और उनसे इसके उद्धारार्थ प्रार्थना की।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—**'हे विष्णो! जिसे आपने एक बार अपना लिया, मेरे द्वारा भी उसे अपनाया हुआ मानिए। मैं इसे अपने समस्त गुणों से सम्पन्न कर अपना-सा बना देता हूँ। मैं अपना सुप्रसिद्ध नाम 'पुरुषोत्तम' इसे अर्पण करता हूँ और इसका नाथ स्वयं बन जाता हूँ।'**

इस प्रकार 'वृहन्नारदीय पुराण' के प्रारम्भिक ६ अध्यायों की कथा से स्पष्ट हो जाता है कि निन्द्य होते हुए भी यह **मल-मास** क्योंकर **'पुरुषोत्तम-मास'** बन गया। आगे के अध्यायों में यह कथा भी है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा कि—**'द्रौपदी ने पूर्व जन्म में मेरे इस परम प्रिय मास का अपमान किया था। इसी के फल-स्वरूप इस जन्म में उसे बनवास और भरी सभा में दुःशासन द्वारा वस्त्र-हरण का दारुण कष्ट सहना पड़ा। इसलिए युधिष्ठिर! आप श्रद्धा-भक्ति के साथ इस मास का 'व्रत' करें।'** फिर, दृढ़धन्वा राजा की कथा, 'व्रत' की विधि, नियम, दीप - दान और उसका महत्त्व, 'व्रत' की उद्यापन-विधि तथा दृढ़धन्वा की श्रीहरि-प्राप्ति, चित्रशर्मा ब्राह्मण की कथा आदि अनेक विषय बड़े ही विस्तार के साथ ललित शैली में प्रस्तुत किए गए हैं, जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि **अधिक मास** सचमुच **'पुरुषोत्तम-मास'** है।

अधिक मास के विषय में भगवान् कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि **'पुरुषोत्तम-मास'** में **धर्माचरण न करनेवाले कुम्भी-पाक-नरक में जा गिरते हैं। अपने भक्तों के अभीष्ट पूर्ण करने में कदाचित् विलम्ब हो, पर मेरे इस मास के भक्तों को इष्ट-दान करने में मैं कभी विलम्ब नहीं कर सकता। सभी मास स-काम हैं, यही एक मास ऐसा है, जिसे मैंने निष्काम बना दिया है। 'मोक्ष' प्राप्त कराने के लिए यह सर्व - श्रेष्ठ 'मास' है।**

योग-चिकित्सा में 'शिथिली-करण'

डा० आर० पी० पाण्डेय, बिलासपुर (म० प्र०)

विभिन्न चिकित्सा-प्रणालियों की भाँति, **'योग-चिकित्सा-प्रणाली'** में भी भिन्न - भिन्न विधियाँ हैं, जिनके द्वारा मानव की शारीरिक तथा मानसिक व्याधि की चिकित्सा की जाती है। **'शिथिली-करण'** में आसनों के महत्त्व की जितनी प्रशंसा की जाए, उतनी ही कम है। इसे जब भी थकान हो, कर लेना चाहिए। पहली बार देखने में **'शिथिली-करण'** के आसन बड़े सरल लगते हैं, फिर भी उन्हें उचित ढङ्ग से करना कठिन है क्योंकि शरीर की सभी मांस-पेशियों को चेतन-रूप से शिथिल करना पड़ता है।

आधुनिक अप्राकृतिक जीवन में लोग अनेक तनावों तथा दुश्चिन्ताओं के अधीन रहते हैं। उन्हें नींद में भी आराम नहीं मिलता। ऐसे लोगों को जिस प्रकार के विश्राम की आवश्यकता है, उसे वे **'शिथिली-करण'** के द्वारा निश्चित ही प्राप्त कर सकते हैं। शरीर और मन को शिथिल करने के लिए तीन विधियाँ महत्त्व-पूर्ण हैं—१ आसनों द्वारा। २ निद्रा द्वारा। ३ योग-निद्रा द्वारा।

'शिथिली - करण' के आसन निम्न प्रकार हैं—१ शवासन। २ अर्द्धासन। ३ वेष्ठिकासन। ४ मकरासन। ५ मत्स्य-क्रीड़ासन। ६ काया-क्रिया।

'शिथिली-करण' शब्द का अर्थ है—**तनाव से मुक्त होना**। इसका यह अर्थ नहीं है कि शिथिल होने के लिए लेटना आवश्यक है। घोड़ा तो ऐसा पशु है, जो खड़े - खड़े नींद लेकर अपने को शिथिल करता है। कोई भी व्यक्ति कार्य में संलग्न रहने पर भी शिथिल हो जाता है या खेलते समय भी इसकी उपलब्धि हो सकती है। यदि आप मोटर के चालक हैं, तो आपको ज्ञात होगा कि तनाव से मुक्त दशा में आप अधिक दूरी तक बिना थके कार चला सकते हैं, परन्तु एक छोटी यात्रा भी, तनाव-ग्रस्त दशा में भार-मय हो जाती है। कार्य करने में, विद्याध्ययन में तथा खेल - कूद के समय 'तनाव' हमारा दिन नष्ट कर देता है, जबकि तनाव-मुक्त अवस्था, समय का सदुपयोग कर आनन्द और उल्लास पैदा करती है। साथ ही मन में आगे के लिए रुचि उत्पन्न करती है। यही नहीं, **'शिथिली - करण'** से मन की स्मृति पैदा करनेवाली प्रति-बिम्बित दशा भी आ सकती है।

'हठ-योग' में प्रयोग में आनेवाली **'शिथिली-करण'** की क्रियाओं के आसनों में **'शवासन'** प्रधान ही नहीं, वरन् अन्य **'शिथिली-करण'** लानेवाले आसनों का आधार भी है। **'शवासन'** के गहरे **'शिथिली-**

(शेष पृष्ठ १७४ पर)

सिन्दूर-धारण करने का अर्थ

श्रीयुत राजेन्द्रदास, सहरसा (बिहार)

निराकार ब्रह्म 'सृष्टि'-उत्पादन के निमित्त साकार होता है। साकार ब्रह्म, एक तेज - पुञ्ज होता है। ब्रह्मवादी **साकार ब्रह्म** को **'एको ब्रह्म'** एवं **सर्व-व्यापी ब्रह्म** कहते हैं। इसे तेजो - **राशि जगत्-प्रभ** अथवा **ज्योतिर्मय ब्रह्म** भी कहते हैं। **ज्योतिर्मय ब्रह्म** की ज्योति का रङ्ग लाल है। निराकार-वादी कबीरदास का एक दोहा है—

लाली मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल। लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल ।।

'ब्रह्म' की ज्योति लाल है और 'सिन्दूर' का रङ्ग भी लाल है। अतः **'सिन्दूर'** को **ब्रह्म का प्रतीक** समझा जाता है। 'ब्रह्म' एक है, किन्तु 'सृष्टि' के निमित्त, 'ब्रह्म' दो भागों में विभक्त हो जाता है—**१ ब्रह्म और २ शक्ति**। 'देवी भागवत' में भगवती का वाक्य है कि **'ब्रह्म एक है। जो ब्रह्म है, वही मैं हूँ। सृष्टि-उत्पादन की इच्छा होते ही हम दो हो जाते हैं।'** **साकार-ब्रह्म**—भगवान् शेष-शायी, नारायण, विष्णु, ब्रह्मा, शिव आदि होते हैं। भगवान् विष्णु ही नाना अवतार धारण करते हैं। दूसरी ओर **साकार-शक्ति-ब्रह्म**—भगवती, परा - शक्ति, अपरा - शक्ति, तेज, विद्या, अविद्या, माया, दश-महा-विद्या आदि हैं। इसलिए 'स्त्री'-जाति को देवी, शक्ति-रूपा, लक्ष्मी आदि कहा जाता है।

शक्ति और ब्रह्म के ज्योतिर्मय होने के प्रमाण में **श्रीदुर्गा सप्तशती** का दूसरा चरित भी है। देवताओं के शरीर से तेज निकला और सब तेज निकलकर एक महान् तेज-पुञ्ज जाज्वल्यमान पर्वत-सा जान पड़ा। उसकी सम्मिलित ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हो गईं। एकत्रित होने पर वही एक 'नारी' के रूप में परिणत हो गया। संक्षेप में वह तेज देवताओं की 'शक्ति' थी, अथवा वह तेज **शक्ति-ब्रह्म** था। इससे यह भी प्रमाण मिलता है कि **शक्ति - ब्रह्म** सबमें व्याप्त है। उसके बिना कोई और कुछ नहीं।

ब्रह्म-वादी का कहना है कि 'ब्रह्म' ही से सृष्टि का उत्पादन है, किन्तु नहीं, **सृष्टि का उत्पादन 'शक्ति' और 'ब्रह्म' दोनों के मिलने से होता** है। किसी ने इनको 'पुरुष' और 'प्रकृति' कहा है, किसी ने कुछ और नाम इन्हें दिए हैं। जब **'शक्ति'** और **'ब्रह्म'** अथवा **'प्रकृति'** और **'पुरुष'** का संयोग होता है, तभी 'सृष्टि' होती है।

हिन्दू स्त्रियाँ सिर में 'सिन्दूर' लगाती हैं। इसका क्या भाव है? सिन्दूर, **ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रतीक** है और 'स्त्री', **माया या प्रकृति, सृष्टि-कारिणी शक्ति या उत्पत्ति - कारिणी शक्ति का प्रतीक है।** स्त्रियों के सिन्दूर लगाने से यही भाव प्रदर्शित होता है कि **ब्रह्म ज्योतिर्मय है, उस ज्योति का रङ्ग लाल है। ब्रह्म और मैं शक्ति एक ही हूँ। हम दोनों मिल कर ही सृष्टि को जन्म देते हैं।**

यहाँ कई प्रश्न उठ सकते हैं। स्त्रियाँ सिर में ही 'सिन्दूर' क्यों लगाती हैं? केवल सधवा स्त्री ही 'सिन्दूर' क्यों लगाती हैं? कुमारी और विधवा क्यों नहीं? पुरुष—विशेषकर शाक्त (शक्ति के उपासक) भी तो 'सिन्दूर' का टीका लगाते हैं। जब स्त्रियाँ सृष्टि-कारिणी शक्ति—जनयित्री के नाते सिन्दूर लगाती हैं, तो पुरुष क्यों लगाते हैं?

समग्र शरीर में 'सिर' की ही प्रधानता है। यह सबसे ऊँचा अङ्ग है। इससे यह 'ब्रह्माण्ड' भी कहा जाता है। यह पवित्र अङ्ग माना गया है। खाद्य, पवित्र, पूज्य वस्तु तथा देव - मूर्ति के साथ रहने पर धर्म-शास्त्र का नियम है कि मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे वे अपवित्र हो जाते हैं। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में इसके निराकरण के लिए यह नियम है कि मल-मूत्र-त्याग के समय, इन वस्तुओं को सिर पर रख लिया जाए। इस नियम से भी यह सिद्ध होता है कि 'सिर' सर्व - श्रेष्ठ अङ्ग है एवं यह ब्रह्म का प्रतीक है। हाँ, एक बात और। 'सिर पर ही यदि यह लगाया जाना चाहिए, तो सबसे ऊपर जहाँ टीक-शिखा या चूल रहता है, वहाँ क्यों नहीं लगाया जाता? ललाट पर ही लगाने का क्या भाव है? ऊपर कह आए हैं कि यह एक प्रकार का प्रदर्शन भी है। चूल के निकट लगाने से यह प्रदर्शित नहीं होगा। इसके अतिरिक्त किसी को 'प्रणाम' करने के लिए ललाट ही आगे होता है। अतः इस 'प्रतीक' को 'प्रणाम' करने के स्थान पर ही लगाया जाता है।

टीके के अतिरिक्त स्त्रियाँ माँग में 'सिन्दूर' लगाती हैं, जो सबसे ऊपर है और वहाँ से प्रदर्शित भी हो सकता है। स्त्रियों के माँग में 'सिन्दूर' लगाने का कुछ अन्य भाव भी है। 'ब्रह्म' सृष्टि में, माया-अविद्या से परिवेष्ठित है और उसी से वह सृष्टि चलती है। यदि यह अविद्या-माया न रहे, केवल विद्या-ही-विद्या रहे, तो सृष्टि चल ही नहीं सकती। सब ब्रह्म - ज्ञानी होकर ब्रह्म में मिल जायँ और सृष्टि हीनता को प्राप्त करे। अतः यहाँ सिन्दूर का भाव यह है कि अविद्या-माया से ब्रह्म-ज्ञान परिवेष्ठित हो सृष्टि सञ्चालित होती है तथा मैं शक्ति—जनयित्री-शक्ति, जनयिता ब्रह्म के संयोग से, अविद्या-माया की सहायता से सृष्टि का उत्पादन तथा सञ्चालन करती हूँ। काले केश अविद्या-माया का प्रतीक है।

स्त्रियों में केवल सधवा स्त्री के 'सिन्दूर' लगाने का भाव यह है कि सधवा स्त्री ही को 'ब्रह्म' या पुरुष का संयोग रहता है। अतः केवल उसे ही जनन - शक्ति रहती है, कुमारी या विधवा स्त्री को यह संयोग या जनन-शक्ति नहीं रहती। हिन्दू - संस्कृति में हम लोग 'शक्ति' को मानते हैं। 'ब्रह्म' और 'शक्ति' के संयोग से सृष्टि-उत्पादन मानते हैं। 'स्त्री'-जाति को श्रेष्ठ-तम स्थान देते हैं। उन्हें देवी कहते हैं। उन्हें भी अपने इस स्थान के लिए, जनयित्री शक्ति का एवं जननी कहाने का गौरव है और यही गौरव वे 'सिन्दूर' लगा कर प्रदर्शित करती हैं।

शक्ति-भगवती—देवी को सिन्दूर रक्त-वर्ण प्रिय है। यह एक साधारण विषय है कि किसी को जो वस्तु या चिह्न प्रिय है, उसको वही वस्तु देने या दिखाने से वह प्रसन्न होता है। उदाहरणार्थ—ग्रहों की शान्ति के लिए अर्थात् ग्रहों को प्रसन्न करने के लिए हर एक ग्रह का अपना अलग-अलग रङ्ग है, जो धारण किया जाता है। जैसे चन्द्रमा के लिए श्वेत रङ्ग—चाँदी आदि; शनि के लिए काला रङ्ग—काला वस्त्र, नील-मणि, लोहा आदि अर्थात् जिस ग्रह को जो रङ्ग प्रिय है, उस रङ्ग को या उस रङ्ग की वस्तु को धारण करने से वह ग्रह शान्त अर्थात् प्रसन्न होता है। इसी प्रकार शक्ति भगवती देवी को लाल रङ्ग से, लाल रङ्ग धारण करने से वे प्रसन्न होती हैं। अतः **शाक्त, शक्ति—भगवती—देवी में विश्वास रखनेवाले तथा इसको समझने और माननेवाले पुरुष भी लाल रङ्ग धारण करते एवं सिन्दूर का टीका ललाट पर लगाते हैं।**

लाल रङ्ग धारण, सिन्दूर का टीका लगाना, भगवती को प्रसन्न करने के ध्येय के अतिरिक्त उनके महत्त्व को समझने या मानने का सङ्केत - प्रदर्शन भी है। एक और बात यहाँ उल्लेख कर देना उचित होगा। पुरुष केवल लाल रङ्ग, सिन्दूर का टीका (गोलाकार) ललाट पर लगाते हैं। लाल रङ्ग,

सिन्दूर और गोलाकार से भाव **शक्ति-ब्रह्म** का ही है। यह टीका, ब्रह्म का प्रतीक होते हुए **शक्ति—भगवती**- देवी का भी प्रतीक है। इसके अतिरिक्त लाल 'सिन्दूर' के टीका लगाने का और लाल वस्त्र-धारण करने की कुछ तान्त्रिक विशेषता भी है।

यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है। कभी - कभी कुमारी भी 'सिन्दूर' का टीका लगाती हैं। तन्त्रोक्त विधान के अनुसार हम कुमारी-पूजा करते हैं, कुमारी-भोजन कराते हैं, हम उसे देवी का प्रतीक मानते हैं और इसी नाते वह सिन्दूर का टीका ललाट पर लगाती है, जनयित्री शक्ति के नाते माँग में नहीं लगाती।

दो वर्ष से दश वर्ष आयुवाली कुमारियाँ देवी के प्रतीक - रूप में तान्त्रिक विधान या स्मार्त रीति से पूजनीय मानी गई हैं। दो वष की आयुवाली **कुमारी** (देवी), तीन वर्ष की **त्रि - मूर्ति**, चार वर्ष की **कल्याणी**, पाँच वर्ष की **रोहिणी**, छः वर्ष की **कालिका**, सात वर्ष की **चण्डिका**, आठ वर्ष की **शाम्भवी**, नव वर्ष की **दुर्गा** तथा दश वर्ष की **सुभद्रा**—देवी-भगवती की प्रतीक मानी गई हैं तथा इन्हीं नामों से इनकी पूजा की जाती है। पूजन में वस्त्रालङ्कार, पुष्प-माला, सुगन्धित तैल, चन्दन, सिन्दूर, काजल, पुष्प, सुगन्ध आदि अर्पण कर उन्हें अलंकृत किया जाता है। अतः **कुमारी को सिन्दूर का टीका लगाने का भाव यही है कि वह देवी की प्रतीक है।**

(पृष्ठ १७१ का शेष)

करण' से 'चेतन' तथा 'अवचेतन'—दोनों तनावों से मुक्ति मिलती है। इन्हें 'मुक्ति - क्रिया' या 'ज्ञान-क्रिया' कह सकते हैं। ये 'ज्ञान - योग' के अन्तर्गत आते हैं। इनमें शरीर और मन—दोनों ही, 'चेतन' तथा 'अवचेतन' तनाव के बिना 'अनुरूप'-अवस्था को प्राप्त करने में लगाए जाते हैं। इस अवस्था को ही **'निस्पन्दन-अवस्था'** अर्थात् तनाव-रहित अवस्था कहते हैं और यह **'निस्पन्द भाव'** या **'शिथिल-क्रिया'** किसी भी स्थिति में प्राप्त की जा सकती है। स्थिर कुम्भक लगाने के बाद दृढ़ आसन के मध्य में, साधक को **'पूर्ण शिथिली-करण'** का अभ्यास करना चाहिए। अथवा फर्श पर लेटकर या कुर्सी पर बैठकर या दीवार के सहारे धरती पर स्वतः को बार - बार शिथिल होने के लिए कहें और प्रत्येक दिन हम जो सोचते हैं, उनमें या तात्कालिक कठिनाइयों में या भविष्य की बातों में लिप्त न रहें। इस भाँति यदि कोई शिथिल होने में सफल हो जाता है, तो उसके शरीर का तनाव यदि ३८ प्रतिशत से ऊपर होगा, तो वह शरीर के स्वाभाविक तनाव (सम्भवतः २६ प्रतिशत) हो जाएगा। शरीर के कार्य - सञ्चालन के लिए यही तनाव आवश्यक है। इसके नीचे का तनाव घातक होता है। इसलिए इस प्रकार के **'शिथिली-करण'** को यथा-सम्भव टालना चाहिए।

'राज-योग' में एक क्रिया है, जिसे **'प्राण-ज्ञान-क्रिया'** कहते हैं। उचित रीति से करने में इसके द्वारा **'प्रत्याहार'** होता है, जिससे गहरा **'शिथिली-करण'** मिलता है, जो चित्त की गहरी एकाग्रता और ध्यान के लिए आवश्यक है। अधिक अवधि तक **'शिथिली-करण'** पाने के लिए पूर्व-तैयारी आवश्यक है। इसके लिए ठण्डक और ठण्डी हवा से बचना चाहिए। आर्द्र-स्थान में कभी न लेटे। शरीर को कम्बल या चादर से ढँके रहे, जिससे शरीर गरम रहे। गहरे **'शिथिली-करण'** से रक्त - चाप गिर जाता है और रक्त-सञ्चार मन्द पड़ जाता है, शीत का अनुभव होता है। इस स्थिति में पहुँचने से बचना अति आवश्यक है। यदि मक्खी या अन्य कीड़े-मकोड़े बाधक हों तो चादर से चेहरा भी ढंक लेना चाहिए। धूप में लेटना और चाँदनी के प्रकाश में **'शिथिली-करण'** का प्रयास करना—दोनों हानिकारक हैं।

एक उद्‌बोधक सच्ची घटना—

'मन्त्र-शक्ति' का चमत्कार

❀ श्रीमती श्यामा ठुस्सू

धर्म-सम्बन्धी हमारे प्राचीन साहित्य का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि हमारे पूर्वज देवी-देवताओं का आवाहन करते थे और वे प्रगट होते थे। परा - शक्ति के नैतिक उद्धार और चमत्कार के सामने नत - मस्तक होना ही पड़ा है। मेरे पति-देव शिकार के बहुत शौकीन थे। उन्होंने बहुत बार मुझसे शिकार में साथ चलने का अनुरोध किया, मैं सदा टालती रही, किन्तु एक बार इन्होंने और इनके हमजोलियों ने कुछ ऐसा मजबूर किया कि बच्चों को अपने विश्वस्त बूढ़े नौकर के पास सरकिट हाउस में छोड़कर हम दस-ग्यारह जनों की पार्टी खुली गाड़ी में चल पड़ी। जङ्गल लाँघते गए। जङ्गलों के कुछ अफसरों ने हमारा खाना आदि तैयार रखा था। खा-पीकर दस के करीब चले, तो वर्षा भी सङ्ग हो ली। अब गाड़ी ऊबड़-खाबड़ में बढ़ती गई। सामने झुण्ड-के-झुण्ड हिरण आए. गोली चली, तो एक मरा। हृदय-विदारक दृश्य था! वह अभी कराह ही रहा था कि एक ने उतर कर उसकी गर्दन छुरे से चीर डाली। वह गाड़ी में रखा गया। आगे नील गाएँ थीं। गोलियाँ चलीं घनाघन, मगर उनको मारने का इरादा नहीं था। सर्च - लाइट पड़ते ही एक साबर मरा। फिर एक चीतल, उसके बाद भी कुछ-कुछ। गाड़ी खून से लथपथ थी! मेरा मन चीखने को हो रहा था कि इतनी निरीह हत्या का नतीजा बुरा होगा जरूर और वह घड़ी भी आ गई।

साढ़े तीन बजे रात यह तय हुआ कि अब लौटा जाए। मुझे छोड़ कर सभी खुश थे। गाड़ी जङ्गल छोड़कर सड़क पर आई। आधे घण्टे चली होगी कि नदी पर पुलिया लाँघ कर चढ़ाई चढ़ने लगी। जब पूरी चढ़ गई, तो सहसा ड्राइवर के हाथ अवश (आउट आफ़ कण्ट्रोल) होकर तेज रफ्तार से पीछे जाने लगी। सब चीखने लगे। ड्राइवर बुरी तरह से चिल्लाया—अपने आपको बचाओ, मैं कुछ नहीं कर सकता!

गाड़ी मुख्य मार्ग छोड़कर झाड़-पत्थर में किनारे की ओर जा रही थी। दोनों तरफ बड़े - बड़े खड्ड और नीचे गर्जना करती हुई पहाड़ी नदी, मौत हमारे सामने थी! घबराहट के मारे पीछे बैठे हुए आदमियों में से तीन कूद पड़े। गाड़ी भी पीछे को ही जा रही थी, जहाँ कि वे कूदे थे। हाय - हाय मच गई! मुझे लगा, जैसे वे निरीह मृत जानवर हमारी तरफ घूर रहे हों।

गाड़ी जरा दाएँ मुड़ी कि जोर का धमाका हुआ। एक बड़ा-सा पत्थर आ गया था, गाड़ी का 'एक्सेल' टूट गया। फिर भी गाड़ी ढाल की ओर जा रही थी कि जरा-सी आड़ी मुण्डेर के साथ लगकर थम-सी गई। सब जने उछल पड़े और गाड़ी को जोर से पकड़ा। मैं भी उतर पड़ी। ये सब लोग टार्चें लेकर दिशाओं की तरफ जाने लगे। मैं कुछ समझी नहीं क्योंकि मैं आगे बैठी थी। मुझे ज्ञात नहीं था कि तीन व्यक्ति कूदे थे। थोड़ी देर में एक साहब आए और अन्य की ओर इङ्गित किया कि 'समाप्त है।'

मैंने पूछा—'क्या है?' किन्तु बताया नहीं, मुँह लटका-सा था। ये घबराए हुए आए और कहा कि 'दो खत्म हैं, एक की कुछ-कुछ उम्मीद है। ब्राण्डी देते हैं।'

मुझे तो जैसे काठ मार गया । सुबह के चार बजे, फरवरी की रात, निरीह अन्धकार, वर्षा की फुहार ! जो पहले कूदा था, वह चट्टान से टकराया था, पूरा लहू-लुहान था, हाथ - पैर ठण्डे । दूसरे के ऊपर से गाड़ी का पहिया चला गया था । तीसरा हल्का कराह-सा रहा था ।

मैंने मन को स्थिर किया, अपनी आराध्य देवी का स्मरण किया । बीस मिनट के बाद सुनाई दिया 'अरे, नब्ज तो चलने लगी है, कम्बल ओढ़ाओ ।'

मैंने अपना मन्त्रोच्चारण नहीं छोड़ा । कुछ ही समय बाद फिर सुनाई दिया—पहिया तो कन्धे के ऊपर से चला गया है और बाँई तरफ का चेहरा और जबड़ा गया है । न जाने कैसे जान गई नहीं है । रुकी हुई साँस हल्की गति से चलने लगी है !

मैंने देवी माँ को लाख-लाख धन्यवाद दिया । तीनों को कम्बलों में लपेट कर ब्राण्डी 'सिप' कराते रहे; झाड़ इत्यादि जमाकर आग सुलगाने की कोशिश करते रहे । वर्षा थी कि बुझाने को तत्पर, हम थे कि जलाने को । प्रातः सात, साढ़े सात बजे हमारे लिए शहर से दूसरी गाड़ी आई ।

सरकिट हाउस पहुँचने पर बूढ़े नौकर ने पहली बात जो कही, वह विस्मय में डालनेवाली थी । उसने कहा कि—आप, आप···आ गए कुशल से ! मैं तो काँप ही रहा था । मैंने रात में एक स्वप्न देखा कि हवा जोर की चल रही है । खुले मैदान में कई लोग हैं । साहब पीठ पर दोनों हाथ रखे खड़े हैं । सामने कम्बल में लपेटा हुआ एक आदमी पड़ा है । उसके सिरहाने एक औरत लम्बे काले केश फैलाए खड़ी है, पर इस औरत के माथे पर सिन्दूर का बड़ा-सा टीका है ।

सुनकर पहले तो मैं चुप रही, फिर हल्की मुसकान-सी चेहरे पर आई । यह स्वप्न देखकर वह चौंक पड़ा था नींद में और घड़ी की ओर देखा था, तो ठीक चार बजे थे । स्मरण रहे कि हमारी दुर्घटना भी ठीक चार बजे हुई थी !

सोचती हूँ कि 'आखिर वह क्या रहस्य था जिसने मुर्दों को जिला दिया, आड़ी मुण्डेर बन कर हमारी प्राण-रक्षा की और घर आकर अपना हाल नौकर के मुँह से सुना !'

देवी भक्तों की पुकार सदा सुनती हैं, केवल 'भावना' प्रबल और शुद्ध चाहिए । जिन विषयों को असाध्य कहा जाता है, वही स्वतः साध्य हो जाते हैं, साधक चाहिए और जिन गुरु-देव की कृपा से साधना सीखी, उन्हें बारम्बार प्रणाम !

(पृष्ठ १७७ का शेष)

जब कभी इस संसार में 'न्याय' और 'अन्याय' का, 'धर्म' और 'अधर्म' का तथा 'प्रकाश' और 'अन्धकार' का सङ्घर्ष तीव्र - तम स्तर पर पहुँचा है, तो उससे उत्पन्न विक्षोभ को शान्त करने के लिए उक्त प्रकार के मनीषियों का आविर्भाव होता रहा है । ऐसे पुरुष साधारण व्यक्ति नहीं, वरन् महा-पुरुष होते हैं । श्रद्धेय ठा० बदन सिंह जी ऐसे ही महा-पुरुष थे, जिन्होंने गृहस्थ-जीवन में रहते हुए भी ऋषि-मुनियों को संस्कृति को अपनाते हुए सर्व-सुलभ आत्म - कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया । वर्तमान युग धर्म के ह्रास का युग है । फलतः ऐसे महा-पुरुषों का अभाव होता जा रहा है ।

५ जून, १९९३ को **'स्वामि - भक्त'** श्रद्धेय मनीषी अचानक ही उस अखण्ड और अलख ज्योति में विलीन हो गए, किन्तु **'सूक्ष्म-शरीर'** से वे आज भी मेरे जैसे जिज्ञासुओं का पथ - प्रदर्शन कर रहे हैं । ऐसे महा-पुरुष सदैव के लिए अजन्मा, अजर-अमर, अलख और अव्यय होते हैं । उन ब्रह्म - लीन ईश्वर-स्वरूप पूज्य चरणों में यह शब्द-सुमन-रूपी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित है ।

श्रद्धा-सुमन
शत-शत प्रणाम

श्री रामनरेश, रायभा, आगरा (उ० प्र०)-२८२००१

लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व जब मैं अपनी पढ़ाई समाप्त कर गाँव वापिस आया, तब मैंने सुना कि **'श्री स्वामी-निवास'** में **'श्रीपीताम्बरा पुस्तकालय'** खुला है, जहाँ छात्रोपयोगी एवं आध्यात्मिक पुस्तकें निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती हैं। मैंने सोचा कि शायद इस गरीब को भी कुछ लाभ मिल जाय, तुरन्त उक्त पुस्तकालय में जा पहुँचा। पुस्तकालय में संग्रहीत साहित्य से मैं प्रभावित हुआ—विशेष कर तन्त्र-मन्त्र-सम्बन्धी पुस्तकों को देखकर। इस विषय में अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए मैं व्यवस्थापक जी से मिला। उन्होंने बताया कि **'जो लोग पुस्तकों में लिखे मन्त्र को ही देखकर उसका जप करने लगते हैं, उन्हें उससे कोई लाभ नहीं मिलता। उलटे उनकी हानि ही होती है।'**

मेरे पूछने पर उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा कि **'दीक्षा ग्रहण किए बिना मन्त्र-सिद्धि नहीं मिलती। इसलिए दीक्षा ग्रहण कर ही मन्त्र का जप करना चाहिए।'**

श्रद्धेय व्यवस्थापक जी ने बताया कि **'दीक्षा' 'आत्म-संस्कार' का ही नामान्तर है। 'आणव', 'मायीय' और 'कार्मण'—इन तीन प्रकार के मल से आत्मा ढँकी रहती है, जिससे वह अपने को अपूर्ण समझती है। 'दीक्षा' द्वारा इस मल-युक्त आत्मा का संस्कार अर्थात् मल - निवृत्ति होती है और निवृत्ति का संस्कार भी शान्त हो जाता है।'**

व्यवस्थापक जी ने यह जानकर कि मैं भी पुस्तकालय से कुछ लाभ प्राप्त करना चाहता हूँ, बड़े स्नेह से कहा कि **'नित्य पुस्तकालय आते रहो, गुरु महाराज तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल करेंगे।'** कितना मार्मिक और ज्ञान से परिपूर्ण था उनका वह उपदेश ! प्रथम साक्षात्कार में ही इस अकिञ्चन को यह विश्वास हो गया कि वे साधारण व्यक्ति नहीं हैं। अतः मैं समय मिलते ही 'श्रीस्वामी निवास' जाता रहा एवं उपासना - सम्बन्धी गूढ़तम रहस्यों को स्पष्ट करनेवाली उनकी अमृत - वाणी का पान करता रहा। उन **'मनीषी'** के प्रति मेरी निष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती गई और मैंने मन - ही - मन उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया, परन्तु **'चरण स्पर्श न करने देने'** जैसे कई सिद्धान्त और प्रातः - स्मरणीय श्रीस्वामी जी महाराज के प्रति उनकी भक्ति-भावना को देखकर कभी अपनी बात कहने का साहस नहीं हुआ।

५ अगस्त, १९३४ को **'रायभा'** में अग्नि - वंश के परमार्य क्षत्रिय - परिवार में जन्मे उक्त **'मनीषी'** ठाकुर श्री बदन सिंह जी ने बी० एस-सी०, बी० ई०, एल-एल० बी, एम० ए० (संस्कृत), वैद्य-विशारद की डिग्रियाँ प्राप्त कीं और सिंचाई - विभाग में चीफ इन्जीनियर के पद तक पहुँचे। उन्हें बाल्य-काल से आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ने का चाव था। मई, १९७६ में उन्हें पूज्यपाद श्री श्री १००८ श्री 'राष्ट्र-गुरु' **स्वामी जी महाराज,** श्रीपीताम्बरा-पीठ, दतिया (म. प्र.) के श्रीचरणों में स्थान मिला। श्री गुरु महाराज का आदेश पाकर उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं।

(शेष पृष्ठ १७६ के नीचे)

वैदिक उदात्त भावनाएँ

डा० मङ्गलदेव शास्त्री

(१) **आशावाद की भावना** : मनुष्य के जीवन को सर्वाधिक दुःखी करनेवाली भावना **'निराशा-वाद' की भावना** है। **'निराशा-वाद'** से अभिभूत मनुष्य जीवन की किसी समस्या को सुलझाने में अस-मर्थ होता है। इसी से **'वैदिक धर्माचरण'** का सम्पूर्ण आधार **आशा-वाद** पर निर्भर है। **'आशा-वाद'** का अभिप्राय यही है कि मनुष्य को अपने जीवन में पूर्ण आस्था रखते हुए उत्तरोत्तर उन्नति का ही लक्ष्य रखना चाहिए और उत्साह-पूर्वक समस्त विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

'वैदिक' साहित्य **'आशा-वाद'** की ओज-पूर्ण, उत्साह-मय तथा उल्लास-मय भावना से ओत-प्रोत है। जैसे—**कृधी न उर्ध्वाञ् चरथाय जीवसे** (ऋग्वेद १/३६/१४) अर्थात् भगवन्! जीवन-यात्रा में हमें समुन्नत कीजिए। **विश्वदानीं सु-मनसः स्याम, पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्** (ऋग्वेद ६/५२/५) अर्थात् हम सदा प्रसन्न-चित्त रहते हुए उदीयमान सूर्य को देखें। **अदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्** (यजुर्वेद ३६/२४) अर्थात् हम सौ वर्षों तक और उससे भी अधिक काल तक दैन्य-भाव से अपने को दूर रखें।

निम्न-लिखित मन्त्र में उत्साह-ओज-पूर्ण जीवन का सुन्दर चित्र दिया गया है—**तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि, बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽस्योजो मयि धेहि, मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि।।** (यजुर्वेद १९/९)।

अर्थात् मेरे आदर्श देव! आप तेज-स्वरूप हैं, मुझमें तेज को धारण कीजिए। आप वीर्य-रूप हैं, मुझे वीर्यवान् कीजिए। आप बल-रूप हैं, मुझे बलवान् बनाइए। आप ओज-स्वरूप हैं, मुझे ओजस्वी बनाइए। आप मन्यु (अनौचित्य को देखकर होनेवाला क्रोध) रूप हैं, मुझमें मन्यु को धारण कीजिए। आप सहस् (विरोधी पर विजय पाने में समर्थ शक्ति) स्वरूप हैं, मुझे सहस्वान् कीजिए।

जीवन के विषय में जैसी उत्कृष्ट आस्था वेद-मन्त्रों में पाई जाती है, वैसी संसार के किसी भी अन्य साहित्य में नहीं मिलेगी। उदाहरणार्थ नीचे के **जीवन-सङ्गीतक** को ही देखिए—**जीवेम शरदः शतम्। बुध्येम शरदः शतम्। रोहेम शरदः शतम्। पूषेम शरदः शतम्। भवेम शरदः शतम्। भूषेम शरदः शतम्। भूयसीः शरदः शतात्।।** (अथर्व-वेद १९/६७/२-८)।

अर्थात् हम सौ और सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवन-यात्रा करें, अपने ज्ञान को बराबर बढ़ाते रहें, उत्तरोत्तर उत्कृष्ट उन्नति को प्राप्त करते रहें, पुष्टि और दृढ़ता को प्राप्त करते रहें, आनन्द-मय जीवन व्यतीत करते रहें और समृद्धि, ऐश्वर्य तथा गुणों से अपने को भूषित करते रहें।

मनुष्य जीवन में एक नवीन स्फूर्ति, नवीन विद्युत् का सञ्चार करनेवाले **'आशा-वाद'** के ऐसे ही अमृत-मय प्राण-सञ्जीवन वचनों से **'वैदिक साहित्य'** भरा पड़ा है। इस **'आशा-वाद'** की भावना का वर्णन हम अपने शब्दों में इस प्रकार कर सकते हैं—

"मनुष्य के लिए निराशा के समान दूसरा पाप नहीं है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह पाप-रूपिणी निराशा को समूल हटा कर **'आशा-वादी'** बने। मनुष्य की सारी उन्नति, जीवन की सफ-

लता और सृष्टि की चरितार्थता 'आशा - वाद' में ही प्रतिष्ठित है। 'आशा' सबसे उत्कृष्ट प्रकाश है। निराशा घोर अन्धकार है। इसीलिए श्रुति में कहा गया है—**"तमसो मा ज्योतिर्गमय"** अर्थात् भगवन्! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलिए।

जीवन में आदर्श भावना, आत्म-विश्वास, कारुण्य, सत्य-परायणता और उत्तरोत्तर समुन्नति—ये बातें **'आशा-वादियों'** में ही पाई जाती हैं, परन्तु **'निराशा-वादी'** लोग स्वभाव से ही उदात्त भावनाओं से विहीन, निष्ठुर या असम्वेदन-शील और संशयालु होते हैं। **'वेद'** में ऐसे ही लोगों को प्रेरणा-विहीन, अज्ञानान्धकार में निमग्न तथा आत्म-विस्मृति-रूप आत्म-हत्या करनेवाला कहा गया है।

(२) **पवित्रता की भावना** : सामान्यतः मनुष्यों की प्रवृत्ति बहिर्मुख हुआ करती है। सामान्य मनुष्य बाह्य लौकिक पदार्थों की प्राप्ति में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। व्यावहारिक जीवन को छोड़ कर, **यज्ञ-दान-जप** आदि के धर्माचरण में भी उसका लक्ष्य प्रायः लोक या पर - लोक में सुख के उपभोग की सामग्री की प्राप्ति ही हुआ करता है। ऐसा होने पर भी, मानव के विकास में एक स्थिति ऐसी आती है, जब वह अपने जीवन की सफलता का मूल्याङ्कन लौकिक पदार्थों या ऐश्वर्य की प्राप्ति में उतना नहीं करता, जितना अपने भावों की पवित्रता और चरित्र की दृढ़ता में करता है। इसके लिए **अन्तः-समीक्षण** या **आत्म-परीक्षण** की आवश्यकता होती है। इसकी योग्यता विरले लोगों में ही होती है। पर, यह मानी हुई बात है कि **'आत्म - परीक्षणं हि नाम मनुष्यस्य प्रथमं समुन्नतेर्मूलम्'** (प्रबन्ध-प्रकाश, भाग २, पृष्ठ ६६), अर्थात् **आत्म-परीक्षण** ही मनुष्य की वास्तविक उन्नति का **मूल** है।

'भगवद्-गीता' का बड़ा भारी महत्त्व इसी बात में है कि वह मनुष्य के प्रत्येक कर्तव्य-कर्म का परीक्षण भावात्मक भित्ति के आधार पर ही करती है। उसके अनुसार हमारे प्रत्येक धार्मिक या नैतिक कर्म का महत्त्व हमारे भावों की पवित्रता पर ही निर्भर है। वैदिक मन्त्रों की भी प्रधान विशेषता **'पवित्रता की तीव्र भावना'** है। उदाहरण के लिए निम्न मन्त्रों पर विचार करें—

पुनन्तु मा देव-जनाः, पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि, जात-वेदः पुनीहि मा ।।

अर्थात् हे सर्व - व्यापक देव! आप मुझे पवित्र कीजिए और ऐसा अनुग्रह कीजिए, जिससे समस्त देव-जन, मेरे विचार और कर्म तथा सब अन्य पदार्थ भी मेरी **'पवित्रता की भावना'** में मेरे सहायक हो सकें। (यजुर्वेद, १६/३६)।

पवमानः पुनातु मा, क्रत्वे दक्षाय जीवसे। अथो अरिष्टतातये ।।

अर्थात् हे पवित्रता-सम्पादक देव! मुझे बुद्धि, शक्ति, जीवन और निरापद आत्म-रक्षा के लिए पवित्र कीजिए। (अथर्व-वेद, ६/१६/२)।

इसी प्रकार **'चरित्र की शुद्धता'** की भावना अनेक वेद - मन्त्रों में पाई जाती है। **यथा—परि माग्ने दुश्चरिताद्, बाधस्वा मा सुचरिते भज।** अर्थात् हे प्रकाश-स्वरूप देव! मुझे दुश्चरित से बचाकर सु-चरित में स्थापित कीजिए। **विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव ।।** अर्थात् हे देव सवितः! आप हमारे पापाचरण को हमसे दूर कीजिए और जो कल्याण हो, उसे हमें प्राप्त कराइए। (यजुर्वेद, ३०/३)

'भाव-संशुद्धि' या **'सङ्कल्पों की पवित्रता'** की प्रार्थना भी वैदिक मन्त्रों की अपनी विशेषता है। यथा—**सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्, नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत् - प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं, तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ।।** अर्थात् निपुण सारथि जैसे रास द्वारा घोड़ों को चलने के लिए बराबर प्रेरित

करता है और उन्हें नियन्त्रित भी रखता है, वैसे ही मनुष्यों को कार्यों में प्रवृत्त करनेवाला और नियन्त्रण में रखनेवाला, हृदय में विशेष रूप से प्रतिष्ठित, जरा से रहित और अत्यन्त गति - शील जो मेरा मन है, वह शुभ और शान्त सङ्कल्पवाला हो। (यजुर्वेद, ३४/६)

'पाप-मोचन, पाप - नाशन' अथवा **'निष्पाप-भावना'** की गम्भीर ध्वनि शतशः वैदिक मन्त्रों में प्रतिध्वनित हो रही है। इस प्रकार की विनम्र प्रार्थना 'अथर्व-वेद' के सूक्तों में तथा अन्य वैदिक मन्त्रों में विशेष ध्यान देने योग्य है। यहाँ एक सुन्दर **'वैदिक गीतिका'** पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत है—

अप नः शोशुचदघम्

भगवन् ! हमारे पाप को भस्म कर दीजिए !

अप नः शोशुचदघमग्ने ! शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ।।१ सु-क्षेत्रिया सु-गातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ।।२ प्र यद् - भन्दिष्ठ एषां, प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ।।३ प्र यत्ते अग्ने ! सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ।।४ प्र यदग्नेः सहस्वतो, विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ।।५ त्वं हि विश्वतो-मुख ! विश्वतः परि-भूरसि । अप नः शोशुचदघम् ।।६ द्विषो नो विश्वतो-मुखाति, नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ।।७ स नः सिन्धुमिव, नावयाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ।।८ (ऋग्वेद, १/९७) ।

अर्थात् १ प्रकाश-स्वरूप देव ! हमारे पाप को भस्म कर हमारी सद्-गुण-सम्पत्ति को प्रकाशित कीजिए। हम बार-बार प्रार्थना करते हैं कि हमारे पाप को भस्म कर दीजिए। २ उन्नति के लिए समुचित क्षेत्र, जीवन-यात्रा के लिए सन्मार्ग और विविध ऐश्वर्यों की प्राप्ति की कामना से हम आपकी उपासना करते हैं। आप हमारे पाप को भस्म कर दीजिए। ३ भगवन् ! आप हमारे पाप को भस्म कर दीजिए, जिससे कि मैं और साथ ही हमारे तत्त्व-दर्शी विद्वान् भी विशेषतः सुख और कल्याण के भाजन बन सकें। ४ प्रकाश - स्वरूप देव ! आप हमारे पाप को भस्म कर दीजिए, जिससे कि हम आपके गुणों का गान करते हुए जीवन में उत्तरोत्तर समुन्नति को प्राप्त कर सकें। ५ भगवन् ! आप विघ्न - बाधाओं को दूर करनेवाले हैं। आपके प्रकाश की किरणें सर्वत्र फैल रही हैं। आप हमारे पाप को भस्म कर दीजिए। ६ हे समस्त विश्व के द्रष्टा ! आप ही सब ओर से हमारे रक्षक हैं। हमारे पाप को भस्म कर दीजिए। ७ हे विश्व-साक्षिन् ! जैसे नाव से नदी को पार करते हैं, उसी प्रकार आप हमें विघ्न-बाधाओं और विरोधियों से पार कर विजय प्रदान कीजिए। आप हमारे पाप को भस्म कर दीजिए। ८ हे महिमाशाली भगवन् ! नाव से जैसे नदी को पार किया जाता है, इसी प्रकार आप हमें कल्याण-प्राप्ति के लिए वर्तमान परिस्थिति से ऊपर उठने की क्षमता प्रदान कीजिए। हमारे पाप को भस्म कर दीजिए।

'पवित्रता' या **'पाप - विनाशन'** की भावना का उक्त प्रवाह वास्तव में **'वैदिक धारा'** की एक अद्वितीय विशेषता है। **'पवित्रता की भावना'** तथा अपने को **'निष्पाप'** करने की उत्कट कामना से परिप्लुत ऐसे ही सैकड़ों वेद-मन्त्र **'वैदिक धारा'** की शाश्वत निधि हैं। नैतिक दुर्बलताओं से अभिभूत, मोहग्रस्त मनुष्यों के लिए वे मार्ग-प्रदर्शक तथा प्राण-प्रद सूर्य-प्रकाश के समान हैं।

मन्त्र-शास्त्र की भ्रामक प्रस्तुति—

'कादम्बिनी' : 'तन्त्र और सम्मोहन-विशेषांक'

श्री भैरवानन्दनाथ, 'शाम्भवी तान्त्रिक शोध संस्थान', सागर (म० प्र०)

[**'मन्त्र-शास्त्र की भ्रामक प्रस्तुति'** स्तम्भ के अन्तर्गत जो आलोचनात्मक लेख **'चण्डी'** में प्रकाशित होते रहे हैं, उनका मुख्य उद्देश्य यह है कि **मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र** जैसी महा-विद्याओं का जो **व्यावसायिक दुरुपयोग** धन या यश-लोलुप महानुभावों द्वारा किया जा रहा है, उस पर कुछ अंकुश लगे। व्यावसायिक महानुभावों द्वारा इन विद्याओं पर तड़क - भड़क के साथ आकर्षक विशेषाङ्क या पत्र - पत्रिकाएँ, पुस्तकें प्रकाशित की जाएँ—इससे अच्छी बात क्या होगी ! हम इसके लिए उनके प्रशंसक रहे हैं और हैं **क्योंकि इस प्रकार के व्यावसायिक प्रकाशनों से उक्त महिमा-मयी विद्याओं का समुचित रूप से प्रचार ही होता है,** किन्तु इन प्रकाशनों में **'ऐसी अशुद्धियाँ या मनमानी बातें कदापि न छपनी चाहिए',** जिनसे पाठकों में भ्रम फैले और वे इन विद्याओं से **लाभान्वित होने के स्थान पर किसी प्रकार के कष्ट में पड़ जायँ।** आशा है, हमारे इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही पाठक इस **'स्तम्भ'** को पढ़ेंगे। यदि किसी को **इस 'स्तम्भ'** की किसी बात से किसी प्रकार के दुःख का अनुभव हो, तो उसके लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं क्योंकि वैसा हमारा कोई भाव नहीं है।—सं०]

'कौल-कल्पतरु चण्डी' के मई, १९९३ के अङ्क में पूज्य 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त जी शुक्ल का लेख—**'मन्त्र-शास्त्र की भ्रामक प्रस्तुति'** अत्यन्त सुन्दर लगा। इस लेख की विशेषता है देश के विभिन्न पाठकों की प्रतिक्रियाएँ—जो इस बात की ओर इशारा करती हैं कि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तन्त्र-मन्त्र आदि पर हो रहे ऊलजलूल प्रकाशन लोगों को क्षुभित कर रहे हैं। **'चण्डी-परिवार'** का आरम्भ से ही यह प्रयास रहा है कि तन्त्र-मन्त्र आदि के सम्बन्ध में भ्रामक प्रकाशनों पर सदैव नजर रखी जाए और समय-समय पर समालोचनात्मक निबन्ध लिखकर पाठक को ऐसे प्रकाशनों से सावधान किया जाए। इसका प्रभाव भी पाठकों पर पड़ रहा है और वे भ्रामक प्रकाशनों से सावधान भी होने लगे हैं।

'कादम्बिनी'-जून, ९३ का **'तन्त्र और सम्मोहन - विशेषाङ्क'** भी इस सन्दर्भ में दर्शनीय है। पत्रिका के सम्पादक **'श्री राजेन्द्र अवस्थी'** को **'तन्त्र'** या **'मन्त्र-शास्त्र'** का 'क-ख-ग' भी नहीं आता, फिर भी इन विषयों पर विशेषाङ्क निकालकर धर्म के नाम पर देश की जनता को दोनों हाथों से लट रहे हैं। जिस तरह सम्पादक महोदय ज्ञान-शून्य हैं, उसी तरह के इस पत्रिका के लेखक भी हैं। **यही लेख यदि 'चण्डी'** में छापने के लिए भेजे जाते, तो वे केवल रद्दी की टोकरी में स्थान पाते, **पत्रिका में** कदापि नहीं। अपने कथन की सत्यता दर्शाने के लिए मात्र दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। **इन** लेखों के लेखकों से निवेदन है कि मेरे विवेचन को गलत सिद्ध कर सकते हों, तो करें, ताकि उनका शास्त्र-ज्ञान प्रमाणित हो सके।

१. **महा-गणेश के अमोघ मन्त्र**—विशेषाङ्क के पृष्ठ ६१ पर **डा० बाल सुब्रह्मण्यम्** का उक्त लेख प्रकाशित है। इस लेख में प्रथम विधान **'त्रैलोक्य - मोहन मन्त्र'** का है, जो निम्न प्रकार छपा है—
'ओं वक्रतुण्डैकदंताय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपतये वर वरद सर्वजन मे वशमानय स्वाहा ।।'

उक्त मन्त्र में ३५ अक्षर हैं, जो शास्त्रीय आधार पर गलत है। अन्य मोटी-मोटी त्रुटियाँ इस प्रकार हैं—

(१) मन्त्र के आरम्भ में **'ओं'** गलत छापा गया है, शुद्ध है—**'ॐ'**। साथ ही श्रीगणेश-मन्त्र **में यह बीज है ही नहीं!** (२) **'दंताय'** नहीं, **'दंष्ट्राय'** होना चाहिए। (३) **'गणपतये'** नहीं, **'गणपते'** होना चाहिए। (४) **'सर्वजन'** नहीं, **'सर्व-जनं'** होना चाहिए। (५) मूल - मन्त्र में ३३ अक्षर हैं, जबकि **डा० साहब** ने ३५ अक्षरों का मन्त्र दिया है। ३५ अक्षरों का, श्रीगणेश का, कोई मन्त्र ऊपर वर्णित शैली का है ही नहीं!

उपर्युक्त त्रुटियों को प्रमाणित करने के लिए **'मन्त्र - महोदधि'** और **'मन्त्र - कोष'** से प्रमाण प्रस्तुत हैं—

वक्र-कर्णेन्दु-युग् णान्तो, डैक-दंष्ट्राय मन्मथः। माया रमा गज-मुखो, गणपान्ते भगी हरिः॥
वर-वालाग्नि-सत्याः स-रेफारूढं जलं स्थिरा। सेन्दुर्मेषो मे वशान्ते, मानयोषर्बुध - प्रिया॥११०
स्यात् त्रयस्त्रिंशदर्णाढ्यो मनुस्त्रैलोक्य-मोहनः॥

(**'मन्त्र-महोदधि'**, द्वितीय तरङ्ग, पृष्ठ ७०, मन्त्र कोष, पृष्ठ १२)

अर्थात् **'वक्र'**, फिर कर्ण (उ) और इन्दु (ं) के सहित 'ण' का अगला वर्ण (त) अर्थात् **'तुं'** फिर **'डैक-दंष्ट्राय'**। फिर मन्मथ **(क्लीं)**, माया **(ह्रीं)**, रमा **(श्रीं)**, गज-मुख **(गं)**। फिर **'गणप'** के अन्त में भगी (ए), हरि (त) अर्थात् **'ते'**। फिर 'वर' वाला (व) अग्नि (र), सत्या (द) अर्थात् **'वरद'**। फिर **'स'**, रेफ (आधा 'र') युक्त जल (व) अर्थात् **'सर्व'**। फिर स्थिरा (ज) इन्दु (ं) सहित मेष (न) अर्थात् **'जनं'**। फिर **'मे वशमानय'** और अन्त में उषर्बुध - प्रिया **(स्वाहा)** लगाने से ३३ अक्षरों का त्रैलोक्य-मोहन मन्त्र बना। इस प्रकार जो मन्त्र स्पष्ट हुआ, वह निम्न प्रकार है—

वक्र-तुण्डैक-दंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपते वर-वरद सर्व-जनं मे वशमानय स्वाहा॥ ३३ अक्षर

उक्त मन्त्रोद्धार की भाषा कुछ कठिन है। अतः सरल भाषा में यही मन्त्र पुनः देखें—

वक्र-तुण्डैक-दंष्ट्राय, क्लीं ह्रीं श्रीं गं वदेत् ततः। गण-पतिं वर-युग्मं, दान्तं सर्व-जनं वदेत्॥
मे वशमानय स्वाहा त्र्यस्त्रिंशल्लिपिर्मनुः॥ (**'मन्त्र-कोष'**, भगवान् गणेश, पृष्ठ १७)

अर्थात् **'वक्र - तुण्डैक - दंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं'** के बाद गणपति **(गणपते)**, फिर वर-युग्म **(वर वर)** फिर 'द' अर्थात् **'वर-वरद'** के बाद **'सर्व-जनं'**, फिर **'मे वशमानय स्वाहा'** युक्त ३३ अक्षरों का मन्त्र है।

इस प्रकार **डा० बाल सुब्रह्मण्यम्** द्वारा प्रकाशित मन्त्र ही गलत है! तब अन्य विधि-विधान कैसे सही हो सकते हैं? इसकी साधना-विधि में आप लिखते हैं—'आचमन और संकल्प के बाद आप इस प्रकार न्यास करें—**गणक ऋषि, गायत्री छन्दः, त्रैलोक्यमोहनकरो गणेशो देवता।**'

अब आचमन और सङ्कल्प कैसे किए जाएँ? यह **डा० साहब** से पूछना व्यर्थ है, वे जानते ही न होंगे। जो व्यक्ति **'विनियोग'** (वह भी अधूरा) को **'न्यास'** बताता है, वह कितना बड़ा **मन्त्रज्ञ है!** पाठक स्वयं अनुमान लगा लें।

मन्त्र के पुरश्चरण हेतु जप-संख्या भी मनमानी दी है। इस मन्त्र का पुरश्चरण ३४ लाख नहीं, ४ लाख जप से होता है। फिर जप-संख्या के दशांश-क्रम से हवन, तर्पण, मार्जन तथा ब्राह्मण-भोजन होता है, जो **डा० साहब** को मालूम ही नहीं!

इस लेख में अन्य सभी मन्त्रों के भी **'विनियोग'** अधूरे हैं और उन्हें **'न्यास'** बताया गया है, जो गलत है। **'कर-न्यास'** और **'षडङ्ग-न्यास'** का उल्लेख तक नहीं है! यन्त्रों के चित्र दिए हैं, पर **'यन्त्र-पूजन'** की विधि एक तो दी नहीं है और जो अति संक्षिप्त विधि दी भी है, वह डा० साहब का अपना आविष्कार है। एक नमूना देखिए—'हरिद्रा-गण-नायक मन्त्र' की विधि में आप लिखते हैं—

'चार लाख जाप करें तथा यन्त्र-पूजन के उपरान्त हल्दी युक्त चावलों को ४ हजार आहुतियों से हवन करें। फिर यथा-शक्ति ब्रह्म-भोज कराने पर मन्त्र-सिद्ध होता है।'

कितनी उत्तम विधि है, इसकी भी परख कर लें—(१) **'यन्त्र-पूजन'** जप के पहले ही किया जाता है, जप करने के बाद नहीं! यन्त्रों के केवल चित्र देने से क्या लाभ? यन्त्र-लेखन के द्रव्य, यन्त्र-लेखन का आधार तथा यन्त्रावरण - पूजन - विधि का कोई उल्लेख न होने मात्र से चित्र से कोई क्या समझ सकेगा! सम्भवतः स्वयं लेखक महोदय को इन बातों का ज्ञान न होगा। ज्ञान होता, तो ऐसी भूल क्यों करते? (२) हवन ४ हजार आहुतियों से नहीं, ४० हजार आहुतियों से होता है। हवन की सर्व-मान्य संख्या पुरश्चरण के जप की दशांश होती है। विशेष विधि-विधानों में यह कम या अधिक भी होती है, पर ऐसी दशा में वहाँ स्पष्ट निर्देश होता है। 'हरिद्रा गणपति' के विधान में कहीं भी पुरश्चरण में ४ हजार हवन का उल्लेख नहीं है। ब्राह्मण-भोजन भी यथा-शक्ति मनमाना नहीं कराया जाता। इसकी भी संख्या निर्दिष्ट है। यथा—हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन या अभिषेक और अभिषेक का दशांश ब्राह्मण-भोजन।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **डा० सुब्रह्मण्यम्** द्वारा प्रस्तुत **'महा - गणपति के अमोघ मन्त्र'** पाठकों को भ्रमित ही करते हैं। सारे विधि-विधान गलत-सलत होने से किसी प्रकार के लाभ की आशा व्यर्थ है। बल्कि, इन विधानों से साधना करनेवाले का अहित ही अवश्यम्भावी है।

२. पीताम्बर (?) पीठ—केवल यहीं बगलामुखी देवी की मूर्ति है।

पृष्ठ ७२ पर उक्त लेख के लेखक हैं—**डा० विद्यानिवास मिश्र**, प्रधान सम्पादक, 'नव - भारत टाइम्स', नई दिल्ली। यह लेख **'श्री पीताम्बरा पीठ'** दतिया (म० प्र०) के विषय में है। **'श्री पीताम्बरा पीठ'** का वर्णन जो है—जैसा है, उससे हमें कोई मतलब नहीं। हमें तो मात्र लेख के शीर्षक से मतलब है। लेखक महोदय को **'पीतम्बर'** और **'पीताम्बरा'** में भेद भी नहीं मालूम! **'पीताम्बर'** का अर्थ है श्रीकृष्ण, विष्णु या वह व्यक्ति, जो पीले रङ्ग के कपड़े पहने हो। यह पुल्लिङ्ग (पुरुष - वाचक) है और **'पीताम्बरा'** का अर्थ है भगवती श्रीबगलामुखी या वह स्त्री, जो पीले रङ्ग के वस्त्र पहने हो। यह स्त्री-लिङ्ग-वाचक है। भगवती बगलामुखी का पीले रङ्ग के वस्त्रों में ही सर्वत्र ध्यानादि किया जाता है, अतः उनका एक नाम **'पीताम्बरा'** भी है और दतिया में इन्हीं का पीठ है। ऐसा स्वयं **मिश्र जी** ने लिखा है, फिर **'पीताम्बरा'** को **'पीताम्बर'** छापने की क्या तुक? ऐसा लगता है कि डा० मिश्र ने **'पीताम्बरा पीठ'** का नाम भर सुना है! न तो दर्शन किए हैं और न ही किसी प्रकार का पीठ-विषयक साहित्य ही पढ़ा है। **'कादम्बिनी'** में छपने के लिए कुछ लिखना था, सो लिख मारा और बलिहारी **'कादम्बिनी'** के सम्पादक **श्री राजेन्द्र अवस्थी** की, जिन्होंने उसे ज्यों - का - त्यों छाप भी दिया! सम्भवत; एक सम्पादक ने दूसरे सम्पादक की लेखनी को काटना या सुधारना उचित नहीं समझा!! तिस पर दावा यह है कि **भारतीय संस्कृति की प्रचारक पत्रिका है 'कादम्बिनी'**, जबकि संस्कृति या साहित्य से इन्हें कुछ लेना-

(शेष पृष्ठ १८६ पर)

जिज्ञासु के पत्र

मध्य प्रदेश के होशङ्गाबाद जनपद से एक बन्धु अपने पत्र दिनाङ्क २४-७-८३ में लिखते हैं—

मैंने कुछ लोगों से, जिनके लेख **'शाबर मन्त्र-संग्रह'** में प्रकाशित हुए हैं, पत्र-व्यवहार किया। उनमें से अधिकांश ने यह लिखा कि उनके पास शाबर मन्त्रों का जो संग्रह था, उसमें से प्रेषित किए हैं, अनुभूत नहीं है। इससे मुझे कुछ ऐसा लगता है कि कुछ व्यक्तियों ने मात्र अपनी आत्म - तुष्टि एवं प्रसिद्धि-प्राप्ति हेतु लेख प्रेषित किए हैं। इसलिए मैं आपसे विनम्र निवेदन करना चाहूँगा कि आपको पहले सन्तुष्टि कर लेना चाहिए कि प्रेषित लेख या संग्रह अन्य ग्रन्थों से उतार कर तो नहीं भेजे गए हैं। मैं व्यक्तिगत किसी का नाम तो नहीं देना चाहता, परन्तु मैंने देखा कि आपकी **'चण्डी'** पत्रिका में व्यक्ति-विशेष द्वारा प्रेषित और **'साधन-माला'** के अन्तर्गत छपा लेख **'मन्त्र - महार्णव'** से उद्धृत किया गया है और दर्शाया यह गया है कि वह उनके द्वारा अनुभूत है!

जहाँ तक मेरा अपना अनुभव है, किसी एक व्यक्ति द्वारा इतने सारे मन्त्रों को सिद्ध करना कोई आसान कार्य नहीं है। सामान्यतः किसी भी मन्त्र का प्रयोग व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु ही करता है, भले ही उद्देश्य सकाम हो या निष्काम (आध्यात्मिक उन्नति हेतु)।

यह जानकर मुझे खुशी हुई कि आपके यहाँ **'शोध - विभाग'** है, जो इस ओर विशेष प्रयत्नशील है, परन्तु मैं आपको यह सुझाव देना चाहूँगा कि किसी भी प्रयोग के परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि उसकी पूर्ण विधि दी हुई हो। अतः मेरा आपसे आग्रह है कि आप **'पुत्र व पुत्री की शादी हेतु'** अनुभूत सिद्ध प्रयोग भेजने का कष्ट करें। साथ ही **'शाबर मन्त्र-संग्रह'** भाग-२, पृष्ठ ३१, **'शाबर-मन्त्र-साधना'** में शाबर मन्त्र जागृत करने की विधि में **'असावरी देवी'** की पूजन-विधि लिखकर भेजने का कष्ट करें। दूसरे **'डिढवन'** का क्या अर्थ है?

सम्पादक का उत्तर : आपने **'शाबर मन्त्र-संग्रह'** के प्रति **'शोधात्मक दृष्टिकोण'** को अपनाया ही नहीं, तदनुरूप 'कुछ' करने का भी प्रयास करने की दूर - दर्शिता दिखाई है, जिसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद। वास्तव में उक्त **'संग्रह'** को प्रकाशित करने का उद्देश्य यही रहा है कि देश में जो **'शाबर मन्त्र'** इधर-उधर बिखरे हुए हैं, उन्हें संग्रहीत कर उन पर शोध किया जाय। **'संग्रह'** करने में **'अनुभूत, अननुभूत, सविधि या विधि-रहित'**—सभी को सम्मिलित करना आवश्यक था और है। जिन बन्धुओं ने अब तक इन **'शाबर'** मन्त्रों को भेजने की कृपा की है, वे सभी बधाई के पात्र हैं। यदि उन्हें कुछ **'आत्म-तुष्टि'** या **'प्रसिद्धि'** मिलती है, तो यह उचित ही है।

आपके सुझाव के अनुरूप यदि हम यह जाँच करने लगते कि प्रेषित लेख या संग्रह अन्य ग्रन्थों से उतार कर तो नहीं भेजे गए हैं, तो इतने अल्प समय में न तो इतना **'शाबर-साहित्य'** चार भागों में प्रकाशित हो पाता और न इतने मन्त्रों की प्रयोग - विधियाँ **'साधन - माला'** के अन्तर्गत प्रकाशित हो पातीं।

रही बात **'मन्त्र-महार्णव'** या किसी भी अन्य ग्रन्थ में प्रकाशित शाबर या अन्य मन्त्रों की। उन्हें भी इन दोनों **'संग्रहों'** में सम्मिलित करना ही है। अतः यदि किन्हीं बन्धु ने **'मन्त्र - महार्णव'** से

कोई लेख उद्धृत किया है, तो उसमें कोई अनौचित्य नहीं है। हाँ, उन्हें ग्रन्थ का नामोल्लेख कर देना चाहिए था। आपने भी उस लेख का नाम नहीं लिखा, अन्यथा सभी को तथ्य की जानकारी हो जाती।

आपका यह अनुभव भी बिलकुल सही है कि किसी एक व्यक्ति के द्वारा **'इतने सारे मन्त्रों'** को सिद्ध करना कोई आसान कार्य नहीं है। सारे मन्त्रों को सिद्ध करने की आवश्यकता भी नहीं है। जैसा कि आपने स्वयं लिखा है कि **'किसी भी मन्त्र का प्रयोग व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु करता है।'** अतः यह स्पष्ट है कि इतने सारे मन्त्रों के संग्रह की उपयोगिता मात्र इतनी है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने **उद्देश्य की प्राप्ति में 'सहायक मन्त्र'** को चुनने में सहायता मिले। साथ ही उस व्यक्ति के मार्ग-दर्शक या गुरु-देव को भी इतने सारे मन्त्रों के उपलब्ध होने से उसे उपयुक्त मन्त्र के सम्बन्ध में सलाह देने में सुविधा होगी।

'विवाह के अनुभूत मन्त्रों' हेतु **'सन्तान-सुख-प्राप्ति के प्रयोग'** पुस्तक देखें। **'असावरी देवी'** के सम्बन्ध में शोध की आवश्यकता है क्योंकि इनका उल्लेख कहीं देखने को नहीं मिलता। **'मन्त्र-महार्णव'** के **'देवी-खण्ड'** के पृष्ठ ६०७ पर **'आसुरी महा - कल्प - प्रयोग'** दिया है। सम्भव है कि **'आसुरी'** का ही अपभ्रंश बिहार में **'असावरी'** नाम से प्रचलित हो। इस सम्बन्ध में **श्री सुधीरकुमार, बेगूसराय (बिहार)** जैसे बिहार - वासी साधकों को स्पष्ट करना चाहिए। **'डिठवन'** शब्द किस पृष्ठ पर छपा है, इसका उल्लेख जिज्ञासु बन्धु ने नहीं किया है। अतः सन्दर्भ के अभाव में सही अर्थ लिखना कठिन है। तथापि यहाँ यह उल्लेखनीय है कि **'डिठवन' (डिठौना)** कहते हैं, बच्चों के माथे या कपोल पर लगाए जानेवाले काजल के उस चिह्न को, जो उसे नजर न लगने से बचाने के लिए माताएं लगाया करती हैं। इसके अतिरिक्त **'देवोत्थानी एकादशी'** को भी कहीं - कहीं **'डिठवन'** कहते हैं। सम्भव है कि वही **'डिठवन'** बिगड़कर **'ढिठवन'** बन गया हो।

(२)

बिहार के पटना जनपद से पं० ताराकान्त मिश्र की जिज्ञासाएँ इस प्रकार हैं—

प्रश्न १ 'दीपावली की पूजा - विधि' पुस्तक में पृष्ठ १० पर, **अपामार्ग और चकबक से शरीर** का प्रोक्षण लिखा है। **अपामार्ग** चीर-चीरा को कहते हैं, परन्तु **चकबक** को बताने का कष्ट करेंगे। क्या अकान या अठबन को चकबक कहते हैं ?

प्रश्न २ 'चण्डी' मासिका पत्रिका, अङ्क ४, वर्ष ४६ (आषाढ़, २०४७) पृष्ठ २६ 'दीक्षा' के सम्बन्ध में 'ज्योतिष'-विज्ञान का मत। (क) जिनके पास 'जन्म-पत्र' नहीं है, वे क्या करें ? (ख) **'शक्ति'-दीक्षा** लेने की इच्छा है। जगत् - जननी पर श्रद्धा है परन्तु 'जन्म-पत्र' के अनुसार **'वैष्णव' - दीक्षा** का विधान है, तो क्या करना चाहिए ? (ग) बचपन में 'मन्त्र' लिया हुआ व्यक्ति, जिसे अपना 'मन्त्र' भी अब याद नहीं, क्या वह पुनः 'दीक्षा' ले सकता है ? अगर हाँ, तो उसी गुरु से या किसी दूसरे गुरु से ? अगर पहले गुरु से ही पुनः दीक्षा लेना हो और वे इस संसार से विदा ले लिए हों, तो उस अवस्था में क्या करना चाहिए ?

प्रश्न ३ प्रायः यह पढ़ने को मिलता है कि **रुद्र-चण्डी** एवं **सप्तशती** को 'शाप' दिया गया है या 'कील' कर दिया गया है। बिना शापोद्धार किए, पाठ करने से पाठ व्यर्थ जाता है। इसलिए **'श्रीदुर्गा-**

सप्तशती' में पहले शापोद्धार का मन्त्र दिया गया है, परन्तु **'लघु - चण्डी'** में केवल 'पाठ' है। क्या **लघु-चण्डी** 'शाप और 'कील' से वञ्चित है ? इसी प्रकार **'सप्त-श्लोकी दुर्गा'**, **'मन्त्रात्मक सप्त-श्लोकी दुर्गा'**, **'त्रयोदश-श्लोकी दुर्गा'**, **'गुप्त सप्तशती'** **'मूल-सप्तशती'** आदि का शापोद्धार या उत्कीलन करने की आवश्यकता है या नहीं ? कृपया बताएँ।

उत्तर १ : 'अपामार्ग' और 'चकबक' के सम्बन्ध में स्थानीय किसी वैद्य या कर्म-काण्डी पण्डित से पूछना चाहिए क्योंकि लोक-भाषा में इन वनस्पतियों के भिन्न-भिन्न नाम हैं।

उत्तर २ : (क) 'जन्म-पत्र' न हो, तो अपने प्रचलित नाम के प्रथम अक्षर से 'राशि' निर्धारित कर तदनुसार 'दीक्षा' लेनी चाहिए। (ख) वैष्णव दीक्षा से शक्ति-दीक्षा का कोई विरोध नहीं है, अपितु शास्त्र के निर्देशानुसार तो यह नियम है कि पहले 'वैष्णव दीक्षा' ले और **'वैष्णवाचार'** का अभ्यास करे। तभी 'शक्ति-दीक्षा' लेकर **'वीराचार'** का पालन करना चाहिए। जन्म - पत्र के अनुसार **'वैष्णव दीक्षा'** उपयुक्त होने पर भी 'शक्ति दीक्षा' ले सकते हैं क्योंकि **'शक्ति'** भी तो **'वैष्णवी'** ही है। (ग) मन्त्र के विस्मृत हो जाने पर पुनः दीक्षा लेनी ही चाहिए। 'दीक्षा' उन्हीं **'पूर्णाभिषिक्त'** गुरु-देव से लेनी चाहिए, जिनके प्रति अपने हृदय में **'श्रद्धा'** हो। गुरु के दिवङ्गत हो जाने की दशा में दूसरे सद्-गुरु की शरण में जाना ही पड़ता है। सद्-गुरुओं में भी अभिन्नता ही होती है। अतः 'अपने गुरु' और 'दूसरे गुरु' में भेद-भाव करना उचित नहीं है।

उत्तर ३ : 'शाप' और **'कील'** आदि के सम्बन्ध में दो मत हैं। एक मत के अनुसार ये सब **'कपोल-कल्पित'** हैं क्योंकि कितने ही लोग बिना शापोद्धार आदि किए ही **'सप्तशती'** का पाठ करके लाभ उठा रहे हैं, अतः जिन्हें इस **'मत'** में श्रद्धा व विश्वास हो, उनके लिए कोई समस्या नहीं है, किन्तु जिन्हें **'संशय'** हो, उनके लिए सबसे सहज उपाय यह है कि अपने मार्ग-दर्शक या गुरु-देव के निर्देशानुसार उक्त सिद्ध मन्त्रात्मक स्तोत्रों का पाठ करें। **'लघु चण्डी'** आदि के सम्बन्ध में जब **'शाप'** या **'कील'** का उल्लेख ही नहीं है, तब उनके सम्बन्ध में वैसी बात करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

—समाधान-कर्त्ता : 'कुल-भूषण' पं० **रमादत्त शुक्ल, प्रयाग-राज (उ० प्र०)**

(पृष्ठ १८३ का शेष)

देना नहीं। इन्हें तो केवल तन्त्र-मन्त्र या इसी प्रकार की विद्याओं पर ऊल - जलूल लेख आदि छापकर देश की जनता की जेब से पैसे झटकवाना है !

'कादम्बिनी' के प्रकाशन - संस्थान से हमारा निवेदन है कि इस प्रकार के ऊट-पटाँग प्रकाशन को सर्वथा रोकें और यदि तन्त्र - मन्त्रादि पर विशेषाङ्क निकालना ही है, तो सैद्धान्तिक और प्रायोगिक ज्ञान से युक्त किसी साधक के निर्देशन में निकालें, न कि **श्री अवस्थी** जैसे स्वयम्भू विद्वान् (तन्त्र - मन्त्र के विषय में) की देख-रेख में, अन्यथा **'कादम्बिनी'** की छवि ही धूल-धूसरित होगी।

'चण्डी' के ५१ वें वर्ष [अप्रैल, ९२] से प्रकाशित

साधनमाला

[श्रावण-अङ्क (अगस्त, ९३) से आगे]

(११८)

सप्तशती-स्तोत्र का विधान

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल

[**'सप्तशती'** का पाठ कैसे करना चाहिए ? भिन्न-भिन्न प्रक्रिया से उसका पाठ करने से क्या-क्या लाभ होता है ? इन सबके सम्बन्ध में छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं। उनमें से किसी एक का अध्ययन करने से यह बात भले प्रकार सिद्ध हो जाती है कि भगवद् - भक्तों के लिए **'सप्तशती'** कैसा अमूल्य रत्न है। **'साधन - माला'** के प्रस्तुत पृष्ठों में **'सप्तशती'** का जो विधान लिखा जा रहा है, वह नेपाल-नरेश-कृत **'पुरश्चर्यार्णव'** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के तत्सम्बन्धी परिच्छेद का अनुवाद मात्र है।—सं०]

श्री महा-देव उवाच—'सप्तशती' का विधान यत्न के साथ कहता हूँ। इसे सुनो। इसे जानकर श्रेष्ठ साधक सभी सिद्धियाँ प्राप्त करता है (मुक्तावली)। 'सप्तशती' का सारा तत्त्व मैं ही जानता हूँ। उसके चार अंशों में एक अंश विष्णु जानते हैं और उसका आधा ब्रह्मा। व्यास उसका चतुर्थांश जानते हैं और उसका कोट्यंश दूसरे लोग (मेरु-तन्त्र)। स्तोत्र के ऋषि, छन्द आदि का न्यास करके बुद्धिमान उसका पाठ करे (वाराही तन्त्र)।

सप्तशती के **प्रथम चरित** के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता महा - काली, बीज वाग् - बीज (ऐं), तत्त्व अग्नि (रं) और **'धर्म - सिद्धि'** के लिए विनियोग है। **मध्यम चरित** के ऋषि विष्णु, छन्द उष्णिक्, देवता महा-लक्ष्मी, बीज **'ह्रीं'**, तत्त्व वायु (यं) और **'धन-प्राप्ति'** के लिए विनियोग है। **उत्तर चरित** के ऋषि शङ्कर, देवता महा - सरस्वती देवी, छन्द त्रिष्टुप्, बीज काम (**क्लीं**), तत्त्व सूर्य (**ह्रीं**), **'काम की प्राप्ति'** के लिए विनियोग है। अन्यत्र तन्त्र में लिखा है—नवार्ण मन्त्र (**ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**) के अक्षरों से षडङ्ग-न्यास करे। साथ ही तीनों देवताओं का ध्यान भी करे।

'वाराही तन्त्र' में पाठ का क्रम यह लिखा है—आधार पर रखकर पुस्तक का पाठ करे क्योंकि हाथ में पुस्तक रखकर पाठ करने से, हे देवि ! आधा ही फल मिलता है। जब तक अध्याय पूरा न हो जाय, पाठ करते समय बीच में रुके नहीं। हे प्रिये ! यदि प्रमाद से अध्याय की समाप्ति के पहले ही

रुकना हो, तो पुनः अध्याय के प्रारम्भ से धीरे-धीरे पाठ करे। हे देवि ! क्रम से पाठ करे और पाठ करते समय शिर आदि न हिलावे।

'महा-काल-संहिता' में लिखा है—ब्राह्मणों का वरण कर, वस्त्र, आसन आदि उन्हें प्रदान कर यजमान मनो-कामना का उल्लेख करके पुस्तक का पूजन करे। पाठ करनेवाला वर्णों का उच्चारण कर धीरे-धीरे पाठ करे। स्पष्ट उच्चारण-पूर्वक पाठ करे। पाठ करते समय शरीर को न हिलावे, न हँसे, न रोवे, न चले-फिरे, न खाए-पिए, न बात-चीत करे और न बीच में पाठ का क्रम भङ्ग करे। इस विधि से पाठ करने से जगदम्बा सन्तुष्ट होती हैं और वे जैसा लिखा है, वैसा ही फल प्रदान करती हैं।

'वाराही तन्त्र' में लिखा है—'स्तोत्र' अथवा 'संहिता' का पाठ आदि और अन्त में प्रणव (ॐ) लगाकर करे, ऐसा आदि-पुरुष ने कहा है। अपनी लिखी, शूद्र की लिखी और अब्राह्मण की लिखी पुस्तक का पाठ करने से कोई फल नहीं होता। यदि स्तोत्र में 'प्रणव' (ॐ) न लिखा हो, तो आदि और अन्त में 'प्रणव' की योजना कर ले, अन्यथा पाठ करना व्यर्थ होता है।

'देवी-पुराण' में लिखा है—पाठ करनेवाले की भले प्रकार पूजा करके 'देवी - माहात्म्य' अर्थात् 'चण्डी' का पाठ करावे। हे राजन् ! इस विधि से जो पाठ करता है तथा सुनता है, चिन्तन करता है या पाठ करवाता है, उसको जो पुण्य होता है, उसे सुनो—एक हजार वाजपेय और सौ अश्वमेध - यज्ञ करने से, हे तात ! जो फल होता है, उससे सौ गुना 'चण्डी-पाठ' से होता है।

'मरीच-कल्प' में लिखा है—आदि में **'रात्रि-सूक्त'** का पाठ करे, बीच में **'सप्तशती - स्तव'** का पाठ करे और अन्त में **'देवी-सूक्त'** का पाठ करे—यही 'चण्डी-पाठ' का क्रम है। इस प्रकार सम्पुटित स्तोत्र के पाठ से सब कामनाओं की सिद्धि तथा अर्थ की प्राप्ति होती है। यहाँ **'रात्रि-सूक्त'—'त्वं स्वाहा त्वं स्वधा'** आदि प्रथम चरित की स्तुति है और **'देवी-सूक्त'—'नमो देव्यै'** आदि तृतीय चरित की स्तुति है। यह नागो जी भट्ट आदि का मत है। दूसरे आचार्य वैदिक सूक्तों को मानते हैं।

'मेरु-तन्त्र' में लिखा है—मार्कण्डेय द्वारा प्रशंसा में कहे गए 'चण्डी - स्तव' को 'मूल - मन्त्र' से पुटित करके उसका पाठ करे। 'मूल-मन्त्र' से आशय है 'नवार्ण मन्त्र' से।

'मरीच - कल्प' में लिखा है—कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तक एक के हिसाब से बढ़ाकर पाठ करे और पाठ के आदि और अन्त में 'नवार्ण' का जप करे। इस प्रकार पुरश्चरण पूर्ण हो जाने पर प्रति - श्लोक से हवन करे। 'रात्रि - सूक्त' तथा 'देवी - सूक्त' की प्रति ऋचा से हवन करे। प्रति श्लोक का अर्थ 'कात्यायनी'-तन्त्रानुसार मन्त्र-विभाग के प्रति मन्त्र से है।

'मरीच-कल्प' में नवरात्र के समय का पुरश्चरण—अब मैं नवरात्र-विधान कहूँगा। इस काल में नौ दिन तक एक के हिसाब से बढ़ाता हुआ पाठ करे। नवाक्षरी के विधान से पूजा करके पाठ करे। मन्त्र का जप एक सहस्र करे। उसका दशांश हवन करे। इस प्रकार पुरश्चरण करने पर सिद्धि मिलती है।

'प्रयोग-सार' में लिखा है—हे राजन् ! 'चण्डी-पाठ' का फल सुनो। सङ्कल्प-पूर्वक और मन्त्र-न्यास - पूर्वक एक आवृत्ति नित्य पाठ करने और उसके बाद बलि - प्रदान करने से पाठ करनेवाले को 'चण्डी-पाठ' करने का पूरा फल मिलता है।

उपसर्ग की शान्ति के लिए तीन आवृत्ति पाठ करना चाहिए। **ग्रह - कोप** की शान्ति के लिए पाँच आवृत्ति पाठ करे। **महा - भय** उत्पन्न होने पर सात आवृत्ति पाठ करे। नौ आवृत्ति पाठ करने से

शान्ति होती है और सारे कष्ट तथा भय दूर हो जाते हैं। **राजा को प्रसन्न करने तथा धन - प्राप्ति** के लिए ग्यारह आवृत्ति करना चाहिए। बारह आवृत्ति **कामना की** सिद्धि और **शत्रु के शमन** के लिए करे। **चौदह** आवृत्ति करने से **शत्रु और स्त्री का वशीकरण** हो जाता है। पन्द्रह आवृत्ति करने से **शत्रु-नाश** होता है और **सम्पत्ति-प्राप्ति** होती है। सोलह आवृत्ति करने से **पुत्र, पौत्र, धन, धान्य की प्राप्ति** होती है।

राज-भय निवारण हेतु और **शत्रु का शमन** करने के लिए सत्रह और अठारह आवृत्ति करे। **जल-प्लावन** से बचने के लिए बीस आवृत्ति पाठ करे। पचीस आवृत्ति करने से **कारागार से मुक्ति** मिलती है। **सङ्कट** के उत्पन्न होने पर, **कठिन रोग** होने पर, **जाति के नाश और कुलोच्छेद** होने पर, **आयु क्षीण** होने के समय, **शत्रुओं की वृद्धि** पर, **रोग - वृद्धि** पर, **धन - नाश** पर, **घोर पाप** होने पर यत्न - पूर्वक **सौ** आवृत्ति पाठ करे, तो कल्याण होगा, **विपत्ति का नाश** होगा और अन्त में **परम गति** प्राप्त होगी।

सौ आवृत्ति करने से **मन में सोची हुई बात की सिद्धि** प्राप्त होती है और **सौ अश्व-मेध-यज्ञ का फल** मिलता है। एक हजार आवृत्ति से स्वयं लक्ष्मी आकर वरण करती हैं और स्थिर होकर रहती हैं। इसके अतिरिक्त **इच्छानुसार भोगों का उपभोग** कर अन्त में **मोक्ष** प्राप्त होता है। जैसे यज्ञों में अश्व-मेध, देवताओं में विष्णु हैं, वैसे ही स्तोत्रों में 'सप्तशती'-स्तोत्र है। इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा स्तोत्र नहीं है। यह स्तोत्र भोग और मोक्ष का देनेवाला, पुण्य-स्वरूप तथा पवित्रों में अति पवित्र है। कहाँ तक कहा जाय, चण्डी के **सौ** पाठों से **सभी सिद्धियाँ** प्राप्त होती हैं।

'मेरु-तन्त्र' में लिखा है—कलि-काल में चण्डी के सदृश सिद्धि देनेवाली तीनों लोकों में कोई वस्तु नहीं है। **'वाम'** और **'दक्षिण'**—दोनों मार्गों के अनुसार यह फल प्रदान करती है। इसके **प्रथम चरित** की योजना **रोग-नाश के लिए, मध्यम चरित** की **उपसर्गों के शमन के लिए** और **अन्तिम चरित** की **विषम कामनाओं की पूर्ति के लिए** करे। प्रथम दो चरितों का पाठ करने से **वंश का कभी उच्छेद नहीं होता**। पहले और तीसरे चरितों के पाठ से **विपत्ति का नाश** होता है। दूसरे और तीसरे चरितों का पाठ करने से **शत्रुओं का शमन** हो जाता है।

(११९)

'कात्यायनी'-तन्त्र के 'सप्तशती'-प्रयोग

'कात्यायनी'-तन्त्रानुसार कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं—१ सप्तशती के प्रति मन्त्र के आदि और अन्त में 'प्रणव' (ॐ) लगाकर जप करने से **मन्त्र-सिद्धि** होती है। २ **'प्रणव-सहित तीनों व्याहृतियों'** की आदि और अन्त में प्रति श्लोक के साथ योजना करके पाठ करने से अति **शीघ्र सिद्धि की प्राप्ति** होती है। ३ प्रति श्लोक के आदि में **'जात - वेदसे'**—ऋचा की योजना करके पाठ करने से **सब कामनाओं की सिद्धि** होती है। ४ **अप-मृत्यु-निवारण** के लिए पाठ के आदि और अन्त में मृत्युञ्जय मन्त्र (ॐ जूं सः) का सौ बार जप करे। ५ प्रति श्लोक के साथ **'शरणागत-दीनार्त'**—इस श्लोक के पढ़ने से **सर्व-कार्य-सिद्धि** होती है। ६ प्रति श्लोक के साथ **'करोतु सा नः शुभ'**—यह अर्द्ध श्लोक पढ़ने से सब **इच्छाओं की पूर्ति** होती है। ७ **अभीष्ट की पूर्ति के लिए 'एवं देव्या वरं लब्ध्वा'**—इस श्लोक का पाठ करे। ८ **सब आपदाओं के निवारण** के लिए प्रति श्लोक के साथ **'दुर्गे ! स्मृता'** का पाठ करे। केवल इस श्लोक का ही

कामना के अनुसार एक लाख, दस हजार, एक हजार, अथवा एक सौ जप करने से **कामना की पूर्ति** होती है। ६ **'सर्व-बाधा'**—इस श्लोक का एक लाख जप श्लोक के अर्थानुसार फल प्रदान करता है। १० **'यदा यदा'**—इस श्लोक का एक लाख जप **महा-मारी को शान्त** करता है।

११ **'ततो वव्रे नृपो राज्यं'**—इसका एक लाख जप करने से **छिना हुआ 'धन'** आदि फिर मिल जाता है। १२ **'हिनस्ति दैत्य-तेजांसि'**—इस मन्त्र से स-दीप बलिदान करने तथा घण्टा - बन्धन से **बाल-ग्रह की शान्ति** होती है। १३ 'सप्तशती' की पहली आवृत्ति अनुलोम से, दूसरी विलोम से और तीसरी फिर अनुलोम से करे—इस प्रकार तीन आवृत्तियाँ करने से **मनोऽभिलषित कामना - पूर्ति शीघ्र** होती है। **१४ सब आपदाओं का निवारण** करने के लिए **'दुर्गे स्मृता'**—इस अर्द्ध-श्लोक की योजना करे। **१५ 'ततो यदन्तिके यच्च दूरके'**—इस ऋचा के अन्त में 'दारिद्रय-दुःख'—इस अर्द्ध- श्लोक को जोड़कर कार्य के अनुसार एक लाख, दस हजार या एक शत जप करने से **उद्देश्य की पूर्ति** होती है।

१६ **'एवमुक्त्वा समुत्पन्ना'**—यह श्लोक प्रति श्लोक के साथ पढ़ने से **शत्रु का पराभव** होता है। १७ **'ज्ञानिनामपि चेतांसि'**—इन तीन श्लोकों के जप से **व्यक्तियों का मोहन** होता है। प्रति श्लोक के साथ उक्त श्लोक का पाठ करने से शीघ्र फल - प्रद होता है। १८ **'रोगानशेषा'**—इस श्लोक का प्रति श्लोक के साथ पाठ करने से सब **रोगों की शान्ति** होती है। केवल उक्त श्लोक के जप से भी उक्त कार्य की सिद्धि होती है। १६ **'इत्युक्त्वा सा तदा देवी, गम्भीरा'**—इस श्लोक का प्रति श्लोक के साथ पाठ करने से अथवा केवल उक्त श्लोक का जप करने से **विद्या की प्राप्ति** होती है और वाणी का दोष दूर हो जाता है। २० **'भगवत्या कृतं सर्वं'**—यह एक सौ बारह अक्षर का मन्त्र **सर्व - काम - प्रद** और **सर्वापत्ति-वारक** है। २१ **'देवि ! प्रपन्नार्ति-हरे'**—इस श्लोक का यथा-कार्य एक लाख, दस हजार, एक हजार या एक सौ जप करने या प्रति श्लोक के साथ पाठ करने से **सर्वापन्निवृत्ति** और **सर्व-कार्य-सिद्धि** होती है।

विशेष—यहाँ जो प्रयोग बताए गए हैं, उन सबमें पाठ करते समय १३ दीपक अलग - अलग जलाए या एक ही पात्र में तेरह बत्तियाँ जलाए और पाठ करे।

(१) प्रति श्लोक 'काम-बीज' (क्लीं) सम्पुटित कर चौरासी दिन तक एक आवृत्ति पाठ करने से सब कामनाओं की सिद्धि होती है। उक्त सम्पुट की रीति से इक्कीस दिन दस आवृत्ति प्रति-दिन पाठ करने से सब **उपद्रवों का शमन** होता है। (२) प्रति श्लोक 'श्री - बीज' (श्रीं) से सम्पुटित पन्द्रह आवृत्ति प्रति दिन ४६ दिन पाठ करने से **लक्ष्मी की प्राप्ति** होती है। (३) 'वाग्-बीज' (ऐं) से सम्पुटित सौ आवृत्ति के पाठ से **विद्या की प्राप्ति** होती है। (४) 'नवार्ण - मन्त्र' से पुटित प्रयोग केवल **कामना के अर्थ करे**। 'वाराही तन्त्र' में लिखा है—सौ बार प्रारम्भ में और सौ बार अन्त में नवार्ण मन्त्र का जप करे। चण्डी का यह सम्पुट-पाठ **कामना-पूर्ति** के लिए किया जाता है।

विशेष—निष्काम पाठ बिना सम्पुट के करे। 'कात्यायनी तन्त्र' में लिखा है—**'स्थिति-क्रम'** का पाठ मुक्ति के लिए, **'संहार-क्रम'** भुक्ति के लिए और श्री तथा पुष्टि के लिए **'सृष्टि - क्रम'** का पाठ है। **'आदि'** से आरम्भ करे, तो **'सृष्टि-क्रम'**, **'शक्रादि-स्तुति'** से आरम्भ कर **'शुम्भ-दैत्य-वध'** तक और **'आदि'** से **'शक्रादि-स्तुति'** तक करे, तो **'स्थिति - क्रम'** तथा 'अन्त' से **'आदि'** तक पाठ करे, तो **'संहार - क्रम'** होता है। इस प्रकार 'सप्तशती' में सात सौ प्रयोग कहे गए हैं। इसी कारण बुद्धिमान् महर्षि व्यास ने इसे **'सप्त-शती'** कहा है।

श्रीगायत्री-कवचम्

विनियोग—ॐ अस्य श्रीगायत्री-कवचस्य ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः ऋषयः। ऋग्-यजुः-सामाथर्वश्छन्दांसि। ब्रह्म-रूपा गायत्री परमा कला देवता। तत् बीजं। भर्गं शक्तिः। धियः कीलकं। पर-ब्रह्म-सायुज्य-द्वारा मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—ॐ ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-ऋषिभ्यो नमः शिरसि। ॐ ऋग्-यजुः-सामाथर्व-छन्देभ्यो नमः मुखे। ॐ ब्रह्म-स्वरूपा-गायत्री-परमा-कला-देवतायै नमः हृदि। ॐ तत् बीजाय नमः गुह्ये। ॐ भर्गः शक्तये नमः पादयोः। ॐ धियः कीलकाय नमः नाभौ। ॐ पर-ब्रह्म-सायुज्य-द्वारा मोक्षार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

	कर-न्यासः	अङ्ग-न्यासः
ॐ तत् सवितुर्ब्रह्मात्मने	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ वरेण्यम् विष्णवात्मने	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ॐ धीमहि शक्त्यात्मने	अनामिकाभ्यां हुम्	कवचाय हुम्
ॐ धियो यो नः कालात्मने	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ प्रचोदयात् सर्वात्मने	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

ध्यान—मुक्ता-विद्रुम - हेम - नील-धवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै—
युक्तामिन्दु-निबद्ध-रत्न - मुकुटां तत्त्वार्थ-वर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयांकुश - कशाः शूलं कपालं गुणम्,
शङ्खं चक्रमथारविन्द-युगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

॥ मानस-पूजन ॥

ॐ लं पृथिव्यात्मने गन्धं समर्पयामि नमः। हं आकाशात्मने पुष्पं समर्पयामि नमः। यं वाय्वात्मने धूपं घ्रापयामि नमः। रं वह्न्यात्मने दीपं दर्शयामि नमः। वं अमृतात्मने नैवेद्यं समर्पयामि नमः। यं रं लं वं हं सर्वात्मने मन्त्र-पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि नमः।

॥ मूल-स्तोत्र ॥

गायत्री पूर्वतः पातु, सावित्री पातु दक्षिणे। ब्रह्म-सन्ध्या तु मे, पश्चादुत्तरायां सरस्वती। पार्वती मे दिशं रक्षेत्, पावकी जल-शायिनी। यातुधानी दिशं रक्षेद्, यातुधान-भयङ्करी।

पावमानी दिशं रक्षेत्, पवमान-विलासिनी । दिशं रौद्री च मे पातु, रुद्राणी रुद्र-रूपिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा । एवं दश दिशो रक्षेत्, सर्वाङ्गं भुवनेश्वरो ।
तत्-पदं पातु मे पादौ, जङ्घे मे सवितुः-पदम् । वरेण्यं कटि-देशं तु, नाभिं भर्गस्तथैव च ।
देवस्य मे तद् हृदयं, धीमहीति च गण्डयोः । धियः पदं च मे नेत्रे, यः-पदं मे ललाटकम् ।
नः पातु मे पदं मूर्ध्नि, शिखायां मे प्रचोदयात् । तत्-पदं पातु मूर्धानं, सकारः पातु भालकम् ।
चक्षुषी तु विकारार्णस्तुकारस्तु, कपोलयोः । नासा-पुटं वकारार्णो, रेकारस्तु मुखे तथा ।
णिकार ऊर्ध्वमोष्ठं तु, मकारस्त्वधरोष्ठकम् । आस्य-मध्ये भकारार्णो, र्गोकारश्चुबुके तथा ।
देकारः कण्ठ देशे तु, वकारः स्कन्ध-देशकम् । स्यकारो दक्षिणं हस्तं, धीकारो वाम-हस्तकम् ।
मकारो हृदयं रक्षेद्, हिकार उदरे तथा । धिकारो नाभि-देशे तु, योकारस्तु कटिं तथा ।
गुह्यं रक्षतु योकार, उरू द्वौ नः पदाक्षरम् । प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जङ्घ-देशकम् ।
दकारः गुल्फ-देशे तु, याकारः पद-युग्मकम् । तकार-व्यञ्जनं चैव, सर्वाङ्गे मे सदाऽवतु ।

।। फल-श्रुति ।।

इदं तु कवचं दिव्यं, बाधा-शत-विनाशनम् । चतुः-षष्टि-कला-विद्या-दायकं मोक्ष-कारकम् ।
मुच्यते सर्व-पापेभ्यः, परं-ब्रह्माधिगच्छति । पठनाच्छ्रवणाद् वापि, गो-सहस्र-फलं लभेत् ।

(१२१)

सिद्ध नाम-कीर्तन

प्रति-दिन प्रातः-काल भगवती के नामों—स्थानों का स्मरण करने से सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति मिलती है । 'त्रिपुरा-रहस्य' के 'माहात्म्य-खण्ड' के अनुसार भगवती के द्वादश स्थानों का 'नाम-कीर्त्तन' यहाँ दिया जा रहा है । प्रातः-काल उठते ही निम्न-लिखित 'नाम-कीर्त्तन' करने से सभी प्रकार की आपदाओं से छुटकारा मिलता है—

काञ्ची-पुरे तु कामाक्षी, मलये भ्रामरी तथा । केरले तु कुमारी सा, अम्बाऽऽनतेषु संस्थिता ।
करवीरे महा-लक्ष्मी, मालिका मालवेषु सा । प्रयागे ललिता देवी, विन्ध्ये विन्ध्य-निवासिनी ।
वाराणस्यां विशालाक्षी, गयायां मङ्गलावती । वंगेषु सुन्दरी देवी, नेपाले गुह्यकेश्वरी ।
इति द्वादश-रूपेण, संस्थिता भारते शिवा । एतासां दर्शनादेव, सर्व-पापैः प्रमुच्यते ।
अशक्तो दर्शने नित्यं, स्मरेत् प्रातः समाहितः । तथाप्युपासकः सर्वैरपराधैर्विमुच्यते ।

श्रीचण्डी-पुराणम्

(हिन्दी अर्थ सहित)

एक दुर्लभ पाण्डुलिपि
का
हिन्दी अनुवाद सहित
पहले पहल प्रकाशन

* 'चण्डी'–स्वरूप-दर्शन
* 'चण्डी' नाम का अर्थ
* 'चण्डी' के विभिन्न स्वरूप
* 'चण्डी' की उपासना
* नारद को शाप
* सती द्वारा देह का परित्याग
* दक्ष का चरित
* मधु-कैटभ का वध
* घोर-वध में नदी का वर्णन
* घोरासुर का वध
* चिक्षुर का वध
* महिषासुर का वध
* सुन्द और उपसुन्द का वध
* मुर आदि दैत्यों का संहार
* तीर्थों का माहात्म्य

मूल्य १५-०० रु०

रजि० संख्या 32981/57

'भाद्रपद', २०५० वि०-सितम्बर, १९९३

रजि० संख्या AD~96

जगदम्बा की सामूहिक उपासना

कल्याण का एकमात्र मार्ग

('कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी का 'चण्डी' १९४२ में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण आह्वान)

आज अति ही दारुण समय उपस्थित है। माँ की शरण ग्रहण करने पर ही मानव का निस्तार हो सकता है। अब केवल वर्ष में दो बार माता की याद कर लेने से काम न चलेगा। चाहिए तो यह कि नित्य ही कुछ-न-कुछ समय निकाल कर माँ की याद अति श्रद्धा के साथ की जाय, परन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो प्रति-मास शुक्ला अष्टमी को तो उनकी सेवा-पूजा में घण्टे-दो-घण्टे का समय अवश्य ही लगाया जाय।

क्या ही अच्छा हो, यदि प्रत्येक गाँव-शहर में किसी सुन्दर स्थान में शाक्त-बन्धु एकत्र होकर, घट-स्थापन-पूर्वक माँ का यजन-पूजन प्रारम्भ कर दें। घट-स्थापन-पूर्वक सविधि षोडशोपचार से माँ का पूजन कर चुकने पर जो लोग 'चण्डी' (श्रीदुर्गा सप्तशती) का पाठ कर सकते हों, 'चण्डी' का पाठ करें और जो पाठ न कर सकते हों, वे चुपचाप बैठ कर 'मन्त्र-जप' या 'नाम-जप' ही करें।

इस प्रकार जगदम्बा का यजन सामूहिक रूप से करने से लोक-कल्याण तो होगा ही, साथ ही परिवार-समाज में धार्मिक भावना का भी उदय होगा। ऐसा करने से ही आज कल्याण सम्भव है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

जगदम्बा की आराधना हेतु सद्यः फलदायी 'चण्डी' मासिक पत्रिका पढ़ें!

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६